॥ ॐ श्रीकृष्णचन्द्रो विजयतेराम् ॥

वंशी

लेखकः—

पं० भोलानाथात्मज

पं० बाबूराम शास्त्री, 'हरेकृष्ण'

संकीर्त्तन-विद्यालय, राधानिवास,

वृन्दावन (मथुरा)

प्रथमावृत्ति २००० | सन् १९४८ | मूल्य १।)

साधनाष्टकम्

——:※:——

क्लेशं वहन्ति पूर्वं ये, विद्यां ते दधते नरः ।
सुवर्णं पावके दग्धं, कान्ति हि लभते यथा ॥१॥

आदौ रमेशचरणौ हृदि सन्निधाय,
कृत्वा च यस्य कृपया स्मरणं सखीनाम् ।
मुक्त्वाशु सर्वदुरितं नयतामुपैति,
दुःखं तमेव भजते न कथं मनुष्यः ?२॥

उषःकालोत्थानं मनसि मुदितं शुकसहितम् ।
मलत्यागे शौचे भवतु सततं शुद्धमुदरम् ॥
असक्तो विप्राणां श्रुतिविहितषट्कर्मणि रतः ।
भजेयं कृष्ण ! त्वां तव चरणयोश्चार्पितफलः ॥३॥

कृष्णं भज त्वं बनमेव लोकः, समाहिता ये निवसन्ति केचित् ।
द्वौ कारणौ विद्धि ममात्र वासे, शरीरयात्रा च परोपकारः ॥४॥

भवाग्निना दह्यमानश्चेच्छीघ्रं त्राणमिच्छसि ?
ब्रह्मचर्यं प्रतिष्ठाप्य कुरु केशवकीर्त्तनम् ॥५॥

महापापी मूढो बहुपतितवीर्योऽस्थिरमतिः ।
अतो राधास्वामिन् ! स्वयमपि बलात्तिष्ठ हृदये ॥
भ्रमे भूते भक्तौ कथमपि न दोषो मम पितः !
स्वयं स्वाप्तेर्मार्गं निजकरुणया दर्शय सदा ॥६॥

भूतं तु भूतं मम किं भविष्यं, जानाति स्वामी न च सेवकोऽयम् ।
याऽऽज्ञात्वदीया खलुवर्त्तमाने, तामेव भक्त्या परिपालयेऽहम्॥७॥

ऊर्ध्वं हरिं पश्य दृढव्रतेन, श्वासेन सार्द्धं जप कृष्ण ! कृष्ण ;
अधस्तले कायकुटुम्बलोके, भवन्तिकार्याणि स्वयं प्रकृत्या ॥८॥
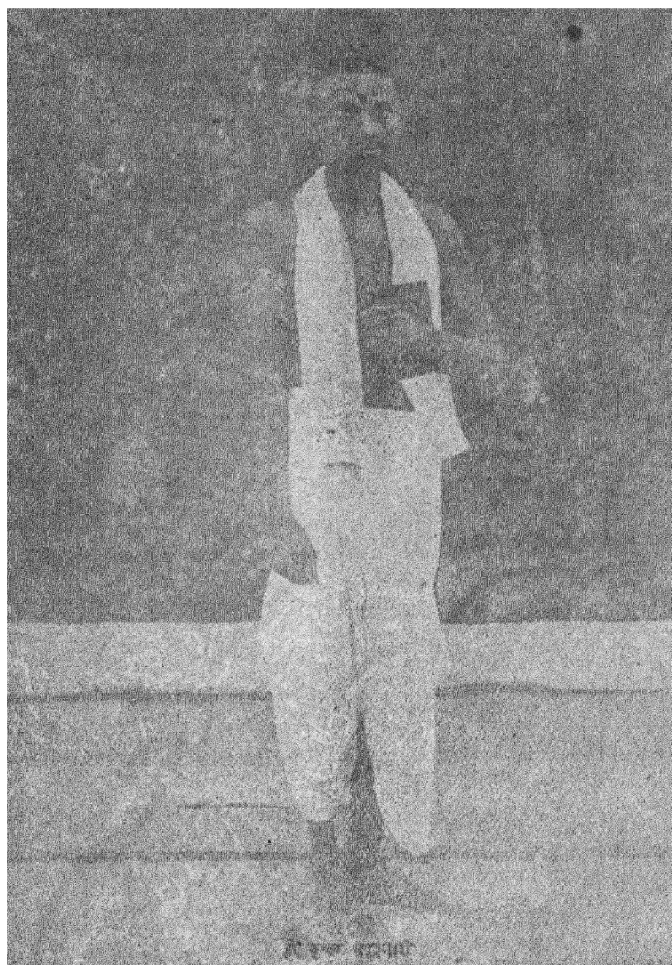
लेखक:—पं० बाबूराम शास्त्री 'हरेकृष्ण'-वृन्दावन

❀ श्रीकृष्ण-सप्तशती ❀

ब्रज—

❀ सवैया ❀

(१)

छवि थी छविराशि के सन्मुख जो, वह दीखती है छवि आज यहाँ।
बन वीथियाँ वृत्त लताद्रुम हैं, सब सुन्दर साज समाज यहाँ॥
अति पावन प्रेम का भाव लिये, रहता नित है रसराज यहाँ।
बहती रस की सरिता ब्रज में, रहते अब भी ब्रजराज यहाँ॥

(२)

हरेकृष्ण ही कृष्ण का कीर्त्तन में, मचता रव है घनघोर यहाँ।
सुनलो सुनलो जमुना जल में, मुरली ध्वनि का वह शोर यहाँ॥
तरु राधे ही राधे पुकार रहे, खिचता मन है बरजोर यहाँ।
कर प्रेम कोई लख ले उसको, रहता अब भी चित चोर यहाँ॥

(३)

वह मोद न मुक्ति के मन्दिर में, जो प्रमोद भरा ब्रजधाम में है।
उतनी छवि-राशि अनन्त कहाँ, जितनी छवि सुन्दर श्याम में है॥
शशि में न सरोज सुधारस में, न ललाम लता अभिराम में है।
उतना सुख और कहीं भी नहीं, जितना सुख कृष्ण के नाम में है॥

(४)

अविराम बहे सुख की सरिता, समता न करें सुरलोक निवासी ।
ब्रजगोपियाँ प्रेम में मत्त रहें, बनना चाहतीं सुरदेवियाँ दासी ॥
किस भाँति सराहें उन्हें मुखसे, जिनका रहे संग सखा अविनाशी ।
अहो ! धन्य है भाग्य बड़ा उनका, हुये जन्म से जो ब्रज में ब्रजवासी ॥

(५)

कहीं मान प्रतिष्ठा मिले न मिले, अपमान गले में बँधाना पड़े ।
जल भोजन की परवाह नहीं, करके व्रत जन्म बिताना पड़े ॥
अभिलाषा नहीं सुख की कुछ भी, दुख नित्य नवीन उठाना पड़े ।
ब्रज भूमि के बाहर किन्तु प्रभो ! हम को कभी भूल न जाना पड़े ॥

(६)

उर ऊपर नित्य रहूँ लटका, अपने बनमाल का फूल बनादे ।
लहरें टकराती रहें जिसमें, कमनीय कलिन्दजा कूल बनादे ॥
कर कञ्ज से थामते हो जिसको, उस वृक्ष कदम्ब का मूल बनादे ।
पद पंकज तेरे छुयेंगे कभी, ब्रजराज ! हमें ब्रज-धूल बनादे ॥

(७)

गेंदा गुलाब की पांति लसै, कहुं मौलसिरी अति सुन्दर साजै ।
केतकी औ करवीर कहूँ, कहुं कुञ्ज करील कदम्ब विराजै ॥
चाँदनी चम्पा चमेली चहूँ, तुलसी हरेकृष्ण ! महा छवि छाजै ।
चारहु ओरसों या ब्रज में, सखे ! बारहु मास बसन्त विराजै ॥

यमुना—

(८)

लहरों से सदा लहराती हुई, दिनरात उतावली सी रहती है ?
निज बीणा निनानितसे स्वरमें, किसके कुछ कानोंमें क्याकहती है ?
किसने कर प्रेम है छोड़ा तुझे, अति व्याकुल हो दुखक्यों सहती है ?
इतनी अति तीव्रता से बतला किस कारण तू जमुना ! बहती है ?

(९)

जब आता है श्रावण मास अरी! तब क्यों फिर से उमगाती है तू ?
निज सीमा के काट कगार दिये, भयभीत सभी को बनाती है तू ?
किसका है वियोग बड़ा तुझको, जिससे इतना अकुलाती है तू ?
किससे मिलने के लिये जमुने ! अविराम कहाँ चलीजाती है तू ?

(१०)

करते निन केलि रहे तुझ में, उनको अति ही अभिराम हुई तू ?
लख बाम चरित्र सदा उनका, कहीं सीधी कहीं फिर बाम हुई तू ?
उसी कृष्ण के कारण से इतनी, अतिपावन पुण्य की धाम हुई तू ?
हमने बस जान लिया जमुने ! घनश्याम की याद में श्याम हुई तू ?

बंशी—

(११)

अति सुन्दर श्याम शरीर लसै, पहिने पटपीत नवीन निराला।
मणि मर्कत शैल के ऊपर ज्यों, रवि बाल-प्रकाश पड़े छविशाला ॥
मुख-मण्डल की छवि कौन कहै, वर बैन मनोहर नैन विशाला।
नर जीवन धन्य वही जिसके, मन मन्दिर में बसा बाँसुरी वाला ॥

(१२)

जमुना जल से लहराते हुये, उजड़ा वन कुञ्ज लता से सजा दे।
हरेकृष्ण! वही रसरीतिसिखा, ब्रजवासियों की भव-भीति भजादे॥
नटनागर वेश बना फिर से, सँग राधिका के रति काम लजादे।
सुनलें श्रवणों से कदम्ब तरे, ब्रजमोहन ! बाँसुरी नेक बजादे ॥

(१३)

शिवशंकर छोड़िदियो डमरू, तजि शारद बीणा को भाजन लागी।
ध्वनि पूरि पताल गई नभ में, ऋषि नारद के शिर गाजन लागी ॥
जड़ जंगम मोहि गये सब ही, जमुना जल रोकि के राजन लागी।
हरेकृष्ण! जबै ब्रज-मंडल में, ब्रजराज की बाँसुरी बाजन लागी॥

(१४)

करकंज पै मंजु कपोल धरे, शशि कोटि मनोज लजा रहा है।
फल फूल मनोहर धातुओं से, नटनागर वेश सजा रहा है॥
सखि ! भीतर भीतर ही मन में, कुछ बेकली सी उपजा रहा है।
जमुना तट कोई कदम्ब तरे, वह बाँसुरी देखो बजा रहा है॥

चोर-शिरोमणि—

(१५)

उस अर्द्ध निशाऋतु पावसमें, जब चोरीके योग्य था वक्त करारा।
तब चोरोंकी लग्नमें जन्म लिया, किया जेलसे देखो तुरंत किनारा॥
वह श्यामशरीर भी योग्यहीथा, घनश्यामकी कान्ति चुराके सँवारा।
फिर नाथ! वृथा भ्रम क्योंकरते? यदि चोर-शिरोमणि नाम तुम्हारा॥

(१६)

यमुनाको चुरा के गये पहिले, घर जाके वहाँ भी सुताको चुराया।
नहीं मिट्टीकी चोरीमें लज्जालगो, किस चोरीसे इन्द्रका गर्वघटाया॥
विष शेष में शेष न छोड़ा जरा, उसको भी चुराकर नाच नचाया।
फिर केशव! क्यों चिढ़ते हमने, यदि चोर-शिरोमणि नाम रखाया॥

(१७)

दधिमक्खन चोरीका भूतल में, सब चोरियों से है विशेष उजाला।
झट चावल छीन चबा भी लिये, अहो! डाका सुदामाके ऊपरडाला॥
भला बाकीरहा उसमें अबक्या, जब चोरीसे जाकर शाकसँभाला।
इन बातों को देखरखा हमने, यह चोर-शिरोमणि नाम निराला॥

(१८)

जब धर्म-धुरीण धनञ्जय ने, रणभूमि में चाहा था धर्म निभाना।
तब मोहचुराके तुम्ही ने वहाँ, गुरु बान्धवोंसे भी महारण ठाना॥
किस चोरीसे बोलो कहाँ कमहै, सहसा दिनमें दिन नाथ छिपाना।
इस कारण आपका है जग में, यह चोर-शिरोमणि नाम पुराना॥

(१९)

बस दृश्य ही वस्तु की चोरी यहाँ, सब चोर धरातल के करते हैं।
पर आप तो मेरा अदृश्य महा, अघ द्रव्य चुराकर के धरते हैं॥
तुम तो हो तुम्हीं तब नाम लिये, चिर-संचित पाप सभी हरते हैं।
फिर चोर-शिरोमणि के पद से, यदुनन्दन ! आप वृथा डरते हैं॥

(२०)

यह चोर सभी विनती सुनके, कुछ में कुछ छोड़ अवश्य ही जाते।
नही छोड़ेंगे मानलो निष्ठुर वे, रहने के लिये घर तो भी बचाते॥
पर आप उसे भी छुड़ा करके, बना भिक्षुक सीधे बनों में पठाते।
फिर चोर-शिरोमणि नाम सुने, मनमोहन ! क्यों इतना घबराते ?

(२१)

मम मानसकी अब जेल चलो, अनुराग की तौक गले में डलाओ।
दृढ़ प्रेमकी रस्सीसे हाथ बँधा, बसते हुये दण्ड युगों तक पाओ॥
पर कंस की जेल समान कहीं, इस भक्तकी जेलसे भाग न जाओ।
हरेकृष्ण ! नतो फिर भूतलमें, तुम चोर-शिरोमणि खूब कहाओ॥

जय-जय —

(२२)

जय हो बसुदेवके लाड़िलेकी, जय देवकी दु:ख निवारी की जयजय।
जय हो जमुनाजल पारगकी, जय गोकुल मारगधारी की जयजय॥
जय नन्द-महोत्सवकी सुषमा, जयपूतना-प्राण-प्रहारी की जयजय।
जगभूषण कृष्ण मुरारीकी जै, ब्रजभूषण बाँकेविहारीकी जयजय॥

(२३)

करबद्ध यशोदा के आँगन में, नलकूबर-शाप-निवारी की जयजय।
शिशुशय्या पै शान्तिसे सोतेहुये, शकटासुर-पाद-प्रहारीकी जयजय॥
बकदानव-चंचुविदारी की जै, अघरूप अघासुरहारी की जयजय।
जगभूषण कृष्णमुरारीकी जै, ब्रजभूषण बाँकेविहारी की जयजय॥

(२४)

नयेवत्स सधेनु बनाकर के, परमेश महाभ्रम-हारी की जयजय ।
विधि वैदिकबन्दना वन्दित जै, खलधेनुक गर्व प्रहारी की जयजय ॥
फणऊपर नृत्यविहारी की जै, विष कालियमर्दन-कारी की जयजय ।
जगपूषण कृष्णमुरारीकी जै, ब्रजभूषण बाँकेविहारी की जयजय ॥

(२५)

जय हो शरणागत रक्षक की, बन बन्हि महाभय हारीकी जयजय ।
कर पूर्ण मनोरथ गोपियोंके, जमुना-तट चीरविहारी की जयजय ॥
जयहो मघवा मद-मर्दनकी, 'हरेकृष्ण' सदा गिरिधारीकी जयजय ।
जगपूषण कृष्णमुरारीकी जै, ब्रजभूषण बाँकेविहारी की जयजय ॥

(२६)

जयहो ब्रजराजकी बाँसुरी की, ब्रजमोहनकी बनवारी की जयजय ।
ललिता रँगदेवी विशाखाकीजै, सुकुमारी श्रीराधिकाप्यारीकी जयजय।
नटनागर नित्यविहारीकी जै, सुख-सागर रासविहारी की जयजय।
जगपूषण कृष्णमुरारीकी जै, ब्रजभूषण बाँकेविहारी की जयजय ॥

(२७)

बध शंख अरिष्टसे दानवोंको, नभ केशी विमर्दन-कारीकी जयजय ।
गजमुष्टिक मल्ल पछाड़दिये, नृप कंस महा मदहारी की जयजय ॥
जयहो कुबजा कलकीर्त्तनकी, जय उद्धवज्ञान-प्रचारी की जयजय ।
जगपूषण कृष्णमुरारी की जै, ब्रजभूषण बाँकेविहारी की जयजय ॥

(२८)

कलकुण्डल केकी किरीटलसै, कल कुञ्चितकेशसँवारी की जयजय ।
मुख देखत ही दुख दूर भये, मुसकान मनोहरधारी की जयजय ॥
जयहो कमला-कुचकुंकुमको, जयकेशव कुञ्ज-विहारी की जयजय ।
जगपूषण कृष्णमुरारीकी जै, ब्रजभूषण बाँकेविहारी की जयजय ॥

राधा—

(२६)

लख माधुरी मूरति मोहन की, बनी प्रेम के रोग की रोगिनी कोई।
निशा शारदी में गलबाँही दिये, रस रासविलासकी भोगिनी कोई॥
कुललाज कुटुम्ब सभी तजके, हुई कृष्ण वियोगमें जोगिनी कोई।
जमुना तट रोरही देखो खड़ी, वह सुन्दरी श्याम वियोगिनी कोई॥

(३०)

सहती न वियोग कभी शशि का, उर में नित ही लपटाती निशा।
हँसती उस चाँद की चाँदनी में, दृढ़ प्रेमका पाठ पढ़ाती निशा॥
ब्रजचन्द-विहीन हमें लख के, मुसकाकर जी है जलाती निशा।
निज अंक में देखो मयंक लिये, इठलाती हुई चली जाती निशा॥

(३१)

मूरति तेजमयी तुम्हरी, मनसों मन-मन्दिर माँहि धरूँगी।
नीरद नैनन के जलसों, पग धोय सबै श्रम वेगि हरूँगी॥
शोणित अर्घ्य औ धूप हियो, विरहानल मुण्डन-माल भरूँगी।
आवहु वेगि दया करिके, इमि स्वागत तेरो वसन्त करूँगी॥

(३२)

राम धरो अवतार जबै, तब खूब सिया का शरीर जला है।
रावण की भगिनी सँग हू, कटु बातें बनाय के वक्त टला है॥
वेणु बजाय के मान हरे, अब राधा सरूप अनूप छला है।
नन्दलला की विचित्र कला, कब काको भला तुम कीन्ह भला है॥

(३३)

नित माखन मिश्री खिला करके, यशुदा से गये बलवान बनाये।
इसी कारण निश्चल होकर के, नख ही पै रहे गिरिराज उठाये॥
यह सुन्दरता यह चंचलता, किसी गोपी से आप चुराकर लाये।
प्रिया राधाके चीर चुराये जो थे, वह जाकर द्रोपदी को पहिनाये॥

(३४)

रसरूपमयी रस की सरिता, सुखरूप सदा सुखकन्दनी के।
वसुधा की सुधा ब्रज की सुषमा, ब्रषभानु-सुता जगवन्दनी के ॥
जल मीनन-मान विभंजनी के, मृगखंजन-नैन-निकन्दनी के।
जिनको जग वन्दत देखो वही, पग वन्दत कीरति-नन्दनी के ॥

(३५)

कल कीरति की कल कीरतिसी, कमनीयता कामिनी कन्तसी राधा।
प्रभु-प्रेम-समाधिकी साधकसो, सुरसेवित सुन्दरी सन्तसी राधा ॥
ब्रजचन्द्र से हैं ब्रजचन्द्र जहाँ, सुख-सार-समुद्र-अनन्त सी राधा।
ब्रज-मण्डल के बगरे बन में, ब्रजराज बहार वसन्त सी राधा ॥

(३६)

नव भूषण भूषित शक्तिमयी, रस रासेश्वरी सुखकारी श्री राधे !
रसिकों की सजीवन मूल तथा, जगतीतल की उजियारी श्रीराधे !!
प्रिय-प्रेम-पुरीकी पताका समा, प्रणयेश की प्राण-पियारी श्रीराधे !
मनमोहन मोह लिये क्षण में, युग लोचनों की बलिहारी श्रीराधे !!

(३७)

बाँकी चितौन सों नेक चितैं, जनरंजन को मनरंजन कीन्हो।
गर्व कुरंग को भंग भयो, अरु मीनन मान बिभंजन कीन्हो ॥
कंजन की गिनती को गिनै, जब खंजन को मद-गंजन कीन्हो।
धन्य री राधिके ! नैन तेरे, जो निरंजन श्यामको अंजन कीन्हो ॥

(३८)

अपने वशमें ब्रजराज किये, कह के वचनामृत आधे की जयजय।
सुरकिन्नर कारज साधेको जै, ब्रजजीवन-प्रेम-समाधे की जयजय ॥
रसरासेश्वरीकी सदा जयहो, हरेकृष्ण! सदा भवबाधे की जयजय।
अतिसुन्दर रूप अगाधेकी जै, बृषभानुकिशोरी श्रीराधे की जयजय ॥

(३९)

अरविन्द से आनन को लखके, झुकी जाती मलिन्दन की अवली है।
मुसकान से फूल झरे पड़ते, अधरों की अहो छवि कैसी भली है ॥
पट नील में दामिनी सो दमकै, द्युति दाँतन की मनो चम्पकली है।
मनमोहन से मिलने के लिये, वह देखो चली वृषभानु-लली है ॥

(४०)

वृषभानुपुरो अमरावती में, उतरी नभ से सुर-स्वामिनो सी।
शुचि प्रमपयोनिधि से निकली, मणि अमृत की अनुगामिनी सी ॥
उर में अति आतुरता फिर भी, गति मन्थर कुंजर-गामिनी सी।
जब मोहन से मिली भानु-सुता, चमकी घन में नव दामिनी सी ॥

(४१)

कीधौं भई चपला अचला, सोई वारिद अंक में मंजुल राजै।
कीधौं पयोनिधि श्यामल में, शुभश्वेत महा सरसोरुह साजै ॥
कीधौं सुश्याम सरोजन में, कल हंस मनोहरता छवि छाजै।
श्रीहरि गोद में श्रीजो लसैं, नभ अङ्क में कीधौं मयङ्क विराजै ॥

(४२)

पहिले नभ-बीच में आकर के, कुछ देर खड़ा घबराता रहा।
प्रिया राधा की ओर चला ग्रसने, पर देख धरा फिर जाता रहा ॥
कभी व्योम के बीच गया तो कभी, इस पृथ्वी में दौड़ लगाता रहा।
यह राहु तो यों चकराता रहा, वह चन्द्र वहाँ मुसकाता रहा ॥

(४३)

सखियो ! सब खूब सचेत रहो, हँसी खेल की वेला है आज नहीं।
दिन रात तो सात समाप्त हुये, पर शान्त हुआ सुरराज नहीं ॥
वृषभानु-सुता को छिपाये रहो, लख ले उसको ब्रजराज नहीं।
कर कंज न काँप उठे जिससे, गिर जाय कहीं गिरिराज नहीं ॥

(४४)

निशि पूरण चन्द्र प्रकाशित हो, खिली मालती पुष्प की बेलियाँ हों।
गलबाँही दिये वृषभानु-सुता, लिये संग समस्त सहेलियाँ हों॥
खड़ी रास-विलास के हेतु सभी, करती मिलके अठखेलियाँ हों।
बरसाने में रंग नया बरसे, मनमोहन की रँगरेलियाँ हों॥

(४५)

रँग खेलेंगी आज रँगीली सुनो, सखियों से सुता वृषभानु की बोली।
'हरे कृष्ण' प्रसन्नता में भर के, भरने लगीं रंग अबीर की झोली॥
इस ओर समस्त खड़ी सखियाँ, उस ओर खड़ी ब्रजराज की टोली।
सखे! देखेंगे आज चलो ब्रज में, मनमोहन की मनमोहनी होली॥

(४६)

बरसाने अचानक श्याम गये, भरे लाल गुलाल की सुन्दर झोली।
लख कुंजन में वृषभानु सुता, वह झोली मनोहर धीरे से खोली॥
दृग मीच गुलाल लगाय दियो, हुई धोखे में आज अजीब ठठोली।
अब और विशेष न छेड़ो उसे, बस मोहन! होनी थी होली सो होली॥

(४७)

हँसते हुये श्याम बुला करके, निज गोद समोद बिठालें जरा।
अनमोल कपोलों को छू करके, फिर लाल गुलाल लगालें जरा॥
रहे सेवक सेव्य का भाव नहीं, उर से अपने लिपटालें जरा।
इस वर्ष की होली सहर्ष प्रभो, इस भाँति कहो तो मनालें जरा॥

(४८)

वृषभानु किशोरी को संग लिये, ब्रज कुंज लतान वितान तने रहो।
अलकावली को बिखराये हुये, हरेकृष्ण! सनेह सुधा सों सने रहो॥
मुख लाल गुलाल लगाये रहो, यदुवीर अबीर के रंग घने रहो।
यह होली का रूप अनूप लिये, बस यों ही सदा ब्रजराज बने रहो॥

(४९)

अहो ! दोउन के मुख चन्द लसैं, अरु दोउन के दृग चारु चकोरी।
पट श्यामल श्याम लखौ पहिने, पटपीत कसे कटि राधिका गोरी ॥
अजी प्रीति की रीति को कौन कहै, विपरीत बनी अति अद्भुत जोरी।
सखे ! सुन्दर कौन कहो इनमें, वृषभानु-दुलारे कि नन्दकिशोरी ?

(५०)

हरिभक्त बनेगा वही जो यहाँ, बिष को रस जान के घूँटने वाला।
सखी ! जाओ न सन्मुख साँवरे के, अँखियान से तीर है छूटने वाला ॥
दृढ़ प्रेम का बंधन लाड़िली का, हरेकृष्ण ! न स्वप्न में टूटने वाला।
रसरूपिणी राधिका सी है कहाँ ? कहाँ मोहन सा रस लूटने वाला ?

सौन्दर्य—

(५१)

शरमार को कौन शुमार करै, सुकुमार भरो सुखको अति भौन है ?
कटि किंकणी नूपुर मंजु बजैं, कर कंजन सों छिटकै जल जौन है ?
अलवेली सी बोली में बात करै, मन को हरती कछु भोली चितौन है ?
जमुना तट धूरि भरे तन में, सखि ! खेलत जो शिशु साँवरो कौन है ?

(५२)

मन मीन फँसे मुनियों के जहाँ, वर वंशीमयी रसधार यही है।
शुकदेव से ज्ञानी को तारने को, तिरछे दृग की तलवार यही है ॥
ब्रज बालकों का है सनेही सखा, ब्रजगोपियों का दिलदार यही है।
दिल छीन हमारा लिया जिसने, वह सुन्दर नन्दकुमार यही है ॥

(५३)

चन्दभली द्युति मन्द किये, मनमाँहि अनन्द बढ़ाय रहे हैं।
दामिनी तुल्य सनेह सनी, मुसकानिहु से मुसकाय रहे हैं ॥
वेणु बजाय बजाय चहूँ, दिशि में सुषमा सरसाय रहे हैं।
देखो हमारे पियारे इतै, नँदलाल कृपाल वे आय रहे हैं ॥

(५४)

केशन की छवि कौन कहै, अति प्यारी लटैं लटकैं झपकारी।
खंजन से दृग अंजन है, मुख चन्द्र समान महा सुखकारी॥
बिद्युत सों पटपीत लसै, हरेकृष्ण! सने छविसों छविधारी।
ऐसे सरूप अनूपहि सों, मन मेरे बसो नित कुञ्ज-विहारी॥

(५५)

कल कुण्डल कानन में पहिने, शिर ऊपर मोर पखान कसे रहो।
करमें मुरली ब्रजराज लिये, जमुना तट राधिका रास रसे रहो॥
बनमाल सों कंठ सुशोभित कै, शुभ पीतपटा की छटासों लसे रहो।
मनमोहिनी ऐसी महा छविसों, मनमोहन! मेरे हियेमें बसे रहो॥

(५६)

जँह मंजु लतान वितान तने, कल कंज के कुञ्ज निकुञ्ज गँसे रहैं।
जँह चातक मोर चकोर फिरैं, अरविन्द कलीपै मलिन्द फँसे रहैं॥
वर वेणु लिये ब्रजराज तहाँ, सुखपाय सनेह के सिन्धु धँसे रहैं।
वृषभानु-सुता के समेत सदा, कृपया 'हरेकृष्ण' पै हेरि हँसे रहैं॥

(५७)

शिर ऊपर मोर के पंख लसैं, उर में बनमाल सुहाया रहे।
कटि काछनी मंजु कसे कटि में, नटनागर वेश बनाया रहे॥
सब व्यंजन भोग पदार्थ तजे, जिसके मन माखन भाया रहे।
वह सुन्दर श्याम सलोना मेरा, इन नैनों में नित्य समाया रहे॥

(५८)

नभ मण्डल में गुरु कोटि उगे, घन से घनश्याम का तेज खसा है।
किसी कज्जल शैल पै दीप शिखा, मखतूल के ऊपर हेम लसा है॥
जमुना-जल पै वड़वानल या, तम राशि के मध्य दिनेश बसा है।
अथवा मनमोहन के शिर पै, कल कुंचित केश किरीट कसा है॥

(५६)

तिरछा है किरीट कसे उर में, तिरछा बनमाल पड़ा रहता है ।
तिरछी कटि काछनी है जिसमें, सुख-सिन्धु सदा उमड़ा रहता है ।।
तिरछे पद कंज कदम्ब तरे, तिरछे दृग तान खड़ा रहता है ।
किस भाँति निकालें कहो दिलसे? तिरछा घनश्याम अड़ा रहता है ।।

(६०)

रवि कोटिकिरीट प्रकाश करैं, मुख देख लजै शशि की उजियाली ।
मकराकृत कुण्डल कानन में, अरु नागिनी सी अलकावली काली ।।
मृग खंजन नैन विहार करैं, है कपोलों के मध्य गुलाब की लाली ।
पहिने बनमाल लखो बन में, वन का ही स्वरूप बना वनमाली ।।

(६१)

शुक नासिका बिम्बसे ओष्ठ लसैं, कल ग्रीवा कपोत सी सुन्दर आली !
वर वेणु सी वेणु विचित्र बजै, कटि केहरी सी लचकै मतवाली ।।
सरनाभि उरुद्वय हैं कदली, पदकंज खिले अति ही छविशाली ।
पहिने बनमाल लखो बन में, बन का ही स्वरूप बना बनमाली ।।

(६२)

अंग में कोटि पतंग लसैं, यह जानि मयंक ने राह गही है ।
पीतपटा की छटा त्यों अटा पर, विद्युत बंक दमंक रही है ।।
मालहु मेघ की पाँति बनी, बिगरी मन में अति लाज लही है ।
श्याम शरीर बिलोकि घटा, बहु नैनन सों जलधार बही है ।।

(६३)

मणिमाला मनोहर कंठ में हो, पहिने उर में बनमाला रहो ।
करते नित रास-विलास रहो, लिये संग सदा ब्रजबाला रहो ।।
अपने मुख चन्द्र की चन्द्रिका से, उर बीच किये उजियाला रहो ।
इन नैनों में नित्य दया करके, तुम नाचते नन्द के लाला रहो ।।

(६४)

अहो गोकुल बीच बधाई बजी, मथुरा में लियो अवतार कन्हैया।
सुखी नन्द यशोदा हुये लख के, अति सुन्दर रूप उदार कन्हैया॥
बन धेनु चरावन आज गयो, हठपूर्वक ही सुकुमार कन्हैया।
श्रम सीकर यों झलके मुखपै, पहिने शशि ज्यों उडुहार कन्हैया॥

(६५)

श्रवणों में निरन्तर गूँज रही, सुखदाई कथा अति साँवरे की।
कलकुंज कदम्ब वही जमुना, लहराई लता अति प्राँवरे की॥
वह नैन हैं नैन सदा जिनमें, छविछाई छटा अति साँवरे की।
हरेकृष्ण! सभी ब्रजप्रेमियों को, मनभाई अदा अति साँवरे की॥

(६६)

अति श्याम सरोज से आनन पै, भ्रमरावली भीर सी होरही हो।
हरेकृष्ण! सुधारस चूसने को, प्रिय प्राण भुजंगिनी खोरही हो॥
निज पंखोंको काक-सुता अथवा, किसी क्षीर-समुद्र में धोरही हो।
अलकैं झलकैं मुख ऊपर ज्यों, शशि गोद में शर्वरी सोरही हो॥

(६७)

ब्रजधूल शरीर से धोकर के, पथ का श्रम दूर निवारती हो।
पहिनाकर भूषण वस्त्र सभी, बिखरे हुये केश सँवारती हो॥
अति प्रेम से माखन मिश्री खिला, मुख बारहिबार निहारती हो।
कवि भारती कैसे कहै सुषमा? छवि-आरती माता उतारती हो॥

(६८)

कजरारे कजाकी करैं किस पै, रतनारे सँवारे विरोचन ये।
अतिप्यारे प्रफुल्लित पंकज दो, मृगमीनन मान विमोचन ये॥
बरछी के समान चुभे तिरछी, दृग कोर मरोर सकोचन ये।
हरेकृष्ण! महादुख मोचन ये, अति सुन्दर श्याम के लोचन ये॥

(६९)

बुझती श्रवणों की पिपासा नहीं, भरे अमृत घोल से बोल हैं तेरे।
किसी प्रेमी को प्रेम-प्रदान किया, पट पीत से झाँकते झोल हैं तेरे॥
किसको किसको किसभाँति कहें, सब अंग ही अंग अमोल हैं तेरे।
अति सुन्दर लोचन लोल हैं तेरे, अति सुन्दर गोल कपोल हैं तेरे॥

(७०)

श्रवणों को निमग्न किया जिसने, वह सुन्दर वंशी की तान है तेरी।
मन मोहित होता तुरन्त सखे ! कुछ ऐसी मनोहर शान है तेरी॥
जिसने कभी स्वप्न में देख लिया, चरणों में गिरा वह आन है तेरी।
हमको बस जान यही पड़ता, कुछ जादू भरी मुसकान है तेरी॥

(७१)

बुझते हुये जीवन दीपक को, निज शुद्ध सनेह से बालता हुआ।
हरेकृष्ण ! मेरी दृग प्यालियों में, मदिरा रस रूप की ढालता हुआ॥
निज दर्शन दिव्य दिखा करके, दिलका दुख दर्द निकालता हुआ।
मनमोहन आया हमारे यहाँ, पटपीत पुनीत सँभालता हुआ॥

(७२)

निशा शारदी में समता के लिये, शशि आज विशेष सुसज्जित सा।
पर व्योम के बीच रहा फिरता, अति व्याकुल होकर भज्जित सा॥
हरेकृष्ण ! सदा घटता वढ़ता, घबराकर सिन्धु निमज्जित सा।
मुख देख मनोहर मोहन का, हुआ पूरण चन्द्रमा लज्जित सा॥

(७३)

मणि कंचन धाम अनेक बने, ब्रज की इन कुंज लतान पै वारौं।
सुरलोक के अमृत सागर को, जमुना-जल-बिन्दु के पान पै वारौं॥
शिव शारद नारद गायक जो, उन्हें एकही वंशी की तान पै वारौं।
शतकोटि कलाधर की किरणें, मनमोहन की मुसकान पै वारौं॥

(७४)

लख रूप अनूप न मोहित हो, उपजा नर कौन भला जग में ।
तज संयम ध्यान समाधि सभी, मुनि वृन्द असंख्य पड़े पग में ।।
मग में मन माखन लूट रहा, गुण कौन विशेष नहीं ठग में ?
मरता कभी कोई कभी तरता, विष अमृत दोनों भरे दृग में ।।

(७५)

घनश्याम शरीर को श्याम घटा, समझे हुये सन्मुख मोर खड़े ।
लख आनन चन्द्र की चारुताको, चिरकाल से चारु चकोर खड़े ।।
सब ओर से घेर खड़ी सखियाँ, हरेकृष्ण ! सखा बरजोर खड़े ।
दृग कोर मरोर जहाँ पर यों, चित-चोर श्री नन्दकिशोर खड़े ।।

(७६)

इस अद्भुत रूप के सागर में, रुकते न बने न बने बहते ।
पथ में पड़ी मोहन मोहनियाँ, चलते न बने न बने रहते ।।
कर तूलिका चित्र चितेरे खड़े, तजते न बने न बने गहते ।
क्षण ही क्षण में छवि और बढ़े, लखते न बने न बने कहते ।।

(७७)

मुनियोगियों को करते वश में, मुरली ध्वनि के गुण आगर कैसे ?
सुरदेवियाँ भी तृण तोरती हैं, मनमोहन रूप उजागर कैसे ?
क्षण ही क्षण में छवि और बढ़े, बने नित्य नये नटनागर कैसे ?
कविता में कहूँ किस भाँति छटा, भरूँ गागर में महासागर कैसे ?

(७८)

भृकुटी लकुटी कुछ ताने हुये, पटपीत जरा लटकाया हुआ है ।
मन मन्दिर में मन मोहन का, मृदु मंजुल रूप बसाया हुआ है ।।
छवि दर्शन का नित ही उनकी, चित चौगुना चाव चढ़ाया हुआ है ।
इस माया को ठौर कहाँ अबतो, उरमें घनश्याम समाया हुआ है ।।

(७६)

मदिरा रस रूप की पीते हुये, यह लोचन दोनों थके रहते हैं।
सुनते सुनते मुरलीध्वनि को, हरेकृष्ण! जके से बके रहते हैं॥
परवाह करें किसकी अब तो, दिनरात उसी को तके रहते हैं।
उस विश्व विमोहन मोहन की, हम तो छवि छाक छके रहते हैं॥

(८०)

कह कोई नहीं सकता छवि को, यह तो ध्रुव सत्य विचार हमारा।
अपनी छवि को तुम आप कहो, तब चाहे मिले उससे छुटकारा॥
बहुतों ने निछावर प्राण किये, तन दे मन लाखों करोड़ों ने वारा।
कितने तुम सुन्दर होगे भला? इतना जब सुन्दर चित्र तुम्हारा?

(८१)

विथुरी अलकैं मुखमण्डल पै, अरु पान से ओष्ठ रँगाये हुये?
रखते कहीं पैर कहीं पड़ते, मुरली कटि में लटकाये हुये?
लगी कज्जल रेखा कपोलों पै क्यों, खड़े अंग सभी अँगड़ाये हुये?
अभी आये हो सोकर मोहन क्या? यह नैन हैं क्यों अलसाये हुये?

(८२)

ब्रज में वह बाँस की बाँसुरिया, विष अमृत पूरित ऊख है मोहन!
दुखदायक दाख का वृक्ष हमें, कमनीय करील का रूख है मोहन!
छबि छाक बिना न मिटेगी कभी, यह जो उपजी उर भूख है मोहन!
अपने इस दीन चकोर को तू, अति शीतल चन्द मयूख है मोहन!

(८३)

यह तो सब भाँति भला ही किया, मन माया की ओरसे मोरना सीखा।
पर प्रीति प्रतीति विशेष बढ़ा, फिर क्यों उस रीति को तोरना सीखा॥
अति सुन्दर वेश बनाकरके, छवि-सिन्धु में चित्तको बोरना सीखा।
चितचोर! हमें भी बतादो जरा, किससे तुमने चित चोरना सीखा॥

(८४)

किस भाँति छुयें अपने कर से, पद पंकज है सुकुमार तेरा।
हरेकृष्ण! बसा इन नैनन में, अति सुन्दर रूप उदार तेरा ॥
नहीं और किसी की जरूरत है, हमको बस चाहिये प्यार तेरा।
तन पै मन पै धन पै सब पै, इस जीवन पै अधिकार तेरा ॥

(८५)

दिल के दिल में भी समायी हुई, यह सूरत है दिलदार तेरी।
इन प्राणों के भीतर गूँज रही, मुरली ध्वनि की झनकार तेरी ॥
करते करते हम हार चुके, मनमोहन सों मनुहार तेरी।
पर सुन्दर श्याम तू रीझा नहीं, बलिहार तेरी बलिहार तेरी ॥

(८६)

अब भी कुछ ध्यान में आता नहीं, वह रास रहस्य अतीत तेरा।
कभी मारा इसे कभी तारा उसे, समै योंही है होता व्यतीत तेरा॥
जिसे आकर नित्य चुराता है तू, मन मेरा बना नवनीत तेरा।
किस भाँति बता सुलझाऊँ इसे, उर में उलझा पटपीत तेरा ॥

(८७)

निज-प्रेम-सुधा-रस सींच प्रभो! ब्रज-कुंजलता लहराते रहो।
इन नैनों में श्याम कलेवर की, घनघोर घटा घहराते रहो ॥
प्रति रोम में राधा को साथ लिये, अति दिव्य छटा छहराते रहो।
कहीं जाओ न प्यारे! उरस्थल में, पटपीत सदा फहराते रहो ॥

(८८)

यह मूरति मंजु तुम्हारी प्रभो! मनमन्दिर में अवरेखा करेंगे।
तुमसे रस रत्न को पाकर के, अब क्या फिर काँच परेखा करेंगे ?
निज प्रेम की लेखनी ले कर में, उर में छवि-चित्र को लेखा करेंगे।
तुम देखो न देखो भले हमको, हमतो तुमको नित देखा करेंगे ॥

(८९)
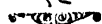
पहिने यह कुण्डल यों ही रहो, अलकावली यों ही सँवारे रहो।
अधरामृत पान कराते हुये, मुरली कर-कंज में धारे रहो॥
नहीं और विशेष करो कुछ तो, अनियारे दृगों से निहारे रहो।
कहीं जाओ न मोहन छोड़ हमें, बने जीवन प्राण हमारे रहो॥

(९०)

हरेकृष्ण! सदा कहते कहते, मन चाहे जहाँ वहाँ घूमा करूँ।
मधु मोहन रूप का पीकर के, उसमें उनमत्त हो झूमा करूँ॥
अति सुन्दर वेश ब्रजेश तेरा, रमा रोम ही रोम में रूमा करूँ।
मनमन्दिर में बिठला के तुझे, पग तेरे निरन्तर चूमा करूँ॥

(९१)

श्रवणों से सुनूँ मुरली ध्वनि को, तव रूप दृगों से निहारा करूँ।
पट-भूषण गन्ध को नासिका से, मुख से हरेकृष्ण! उचारा करूँ॥
तन से करूँ सेवा तुम्हारी सदा, मन से सुमिलाप विचारा करूँ।
इस भाँति तुम्हें अपना कर के, तन से मन से अति प्यारा करूँ॥

(९२)

मनमोहन! मान मना करके, किस भाँति बताओ रिझालूँ तुम्हें।
कुछ तो अरमान मिटे दिल का, इस छाती से नेक लगालूँ तुम्हें॥
अब और विशेष न कामना है, बस अङ्क में श्याम विठालूँ तुम्हें।
उर अन्तर में ही छिपालूँ तुम्हें, निज प्राणों का प्राण बनालूँ तुम्हें॥

(९३)

पहिना कर कुण्डल कानन में, अलकावली तेरी सँवारा करूँ।
कर रंग कपोलों का केसरिया, कल केसर आड़ निकारा करूँ॥
पदपंकज लौं बनमाल पिन्हा, कटि में कटि काछनी धारा करूँ।
इस भाँति मनोहर वेश बना, छवि आरती नित्य उतारा करूँ॥

(६४)

ब्रज में बजी बाँसुरी मोहन की, रण-शंख बजा घनघोर कहीं ।
कभी गीता के ज्ञान का गायन तो, कभी रास-रचा बरजोर कहीं ॥
कभी कंस को काल समान लगा, बना गोपियों का चित चोर कहीं ।
उसकी वह लीला वही समझे, इस ओर कहीं उस ओर कहीं ॥

(६५)

प्रभु प्रेम के अक्षर ढाई पढ़े, पढ़ना फिर आगे को वेद है क्या ?
हँसना कभी अश्रु विमोचन है, उरकम्प शरीर में स्वेद है क्या ?
जब प्रेम परस्पर है हम में, चलो आओ मिलें अब खेद है क्या ?
तुम हो हम में हम हैं तुम में, तुम में हम में फिर भेद है क्या ?

(६६)

बसुधा जल व्योम चराचर में, थल कौन जहाँ पै नहीं तुम हो ।
जिसके उर में कुछ प्रेम नहीं, उस को न अवश्य कहीं तुम हो ॥
यदि प्रेम प्रपूरित है मन तो, हम को सब भाँति यहीं तुम हो ।
लग जाये जो ध्यान पदाम्बुज में, फिर क्या सब ओर तुम्हीं तुम हो ॥

(६७)

कागज भूतल को करि के, अरु लेखनी बृक्षन की बनवावैं ।
सात समुद्रन के जल में, बहु कज्जल शैल की स्याही मिलावैं ॥
शेष गणेश सुरेशहु से, हरेकृष्ण ! अनेक सहायक लावैं ।
लेख लिखे यदि शारद हू, घनश्याम छटा न तऊ लिखि पावैं ॥

वियोग—

(६८)

इन प्राणों के भीतर गूँजा नहीं, मुरलीध्वनि में घनघोर है कैसा ?
नहीं अमृत पीकर तृप्त हुआ, मुख चन्द तेरे का चकोर है कैसा ?
इस पापी को तारा नहीं अब भी, पतितों के उबार में जोर है कैसा ?
मन माखन मेरा चुराया नहीं, मनमोहन ! माखनचोर है कैसा ?

(९९)

वह और की आशा करे न करे, जिसे आश्रय श्रीहरिनाम का है।
उसे स्वर्ग से मित्र! प्रयोजन क्या? नित वासी जो गोकुलधाम का है॥
बस सार्थक जन्म उसीका यहाँ, हरेकृष्ण! जो चाकर श्याम का है।
बिना कृष्ण के दर्शन के जग में, यह जीवन ही किस काम का है?

(१००)

मनमीन जिये किस भाँति कहो, जब वंशी से फाँसा गला ही गया?
छवि राशि जरा दिखला करके, मुझे धोखे में आज छला ही गया?
अब जीवित कैसे रहेंगे भला? वह प्रेम की अग्नि जला ही गया?
नहीं रोके रुका मन लेकर के, हँसता हुआ श्याम चला ही गया?

(१०१)

लख चित्र चरित्र सुना जब से, वश में न रहा तब से मन मोरा
विष तीर से चीर शरीर चुभे, अनियारे बड़े दृग दीरघ कोरा॥
दिन रात न चैन पड़े अब तो, उसके मुख चन्द का मैं हूं चकोरा।
बस देखा ही रूप करूँ उसका, अति प्यारो लगै हमें नन्द को छोरा॥

(१०२)

कुलरीति भई विपरीत सबै, भय त्याग के लोक की लाज बिसारे।
सब ज्ञान गुमान भुलाय गयो, जप संयम ध्यान वृथा करि डारे॥
यहि प्रेम में नेम कहाँ निबहै, अरु योग बियोग में कौन सम्हारे।
हरेकृष्ण को धर्म गयो तब से, जब से लगो' साँवरो नैन हमारे॥

(१०३)

जब से उन आँखों से आँखें मिलीं, होगयी हैं तभी से बावली आँखें।
नहीं धीर धरैं अति व्याकुल हैं, उपजाती हिये पुलकावली आँखें॥
कुछ जादू भरी कुछ भाव भरी, उस साँवले की हैं साँवली आँखें।
फिर से वह रूप दिखादे कोई, हो रही हैं अतीव उतावली आँखें॥

(१०४)

टेढ़ी सी पाग लसै शिर पै, तथा टेढ़ी सी सोहत गुंजन माला।
टेढ़ी सी ग्रीवा झुकी कर पै, अरु टेढ़ी सी भौंहें कटाक्ष कराला॥
टेढ़ी सी बोली में बात करै, कुछ टेढ़ी सी चाल चलै मतवाला।
टेढ़ी सी भूमि गहै मन को, जहाँ टेढ़ो बिराजत नन्द को लाला॥

(१०५)

वह व्यापक ब्रह्म अगोचर है, इस निर्गुण ज्ञान से दूर हूँ मैं।
हम कौन? कहाँ? किस भाँति नहीं, इस सोच विचार में चूर हूँ मैं॥
बस श्याम सलोने बसे उर में, उनके मद से भरपूर हूँ मैं।
'हरेकृष्ण' की एक यही उपमा, वह हैं घनश्याम मयूर हूँ मैं॥

(१०६)

अधरामृत पीती हुई मुख से, मुरली मन मोद मढ़ी ही रही।
हरेकृष्ण! मनोहर मस्तक पै, कल केसर आड़ कढ़ी ही रही॥
फिर मोहन! रूठ न जाओ कहीं, यह शंका सदैव बढ़ी ही रही।
हँस हेर दयालु हुये फिर भी, कुछ भौंह कमान चढ़ी ही रही॥

(१०७)

हम प्रेम से नित्य मनाते रहे, पर नैन तुम्हारे तने ही रहे।
नहीं ध्यान हुआ कहने का जरा, निज चित्त के ठान ठने ही रहे॥
मुखचन्द्र मनोहरता लखते, हरेकृष्ण! सनेह सने ही रहे।
बिनती करके हम हार चुके, पर क्रोधित आप बने ही रहे॥

(१०८)

दुखिया इन नैनों का वास तजा, किसी और के नैनों में छा रहे हो।
अति आतुर हो मुरली ध्वनि में, किस के शुभ नाम को गा रहे हो॥
हम से मुख बोल कहो न कहो, मन ही मन में सुख पा रहे हो।
इस भाँति निशीथ में छोड़ हमें, मनमोहन! क्यों कहाँ जा रहे हो?

(१०९)

वरबीणा में क्या बली बादलों में, मुरली ध्वनि सा घनघोर न होगा।
चित चोरी जो सन्मुख नित्य करै, इतना अति चंचल चोर न होगा॥
वह कौन सा भावुक भक्त भला, मुखचन्द जो देख चकोर न होगा।
हरेकृष्ण! तथापि त्रिलोक में भो, तुमसा कहीं कोई कठोर न होगा॥

(११०)

मुरली ध्वनि में कुछ गाता हुआ, मम सन्मुख ही इतराता है क्यों?
हम जानते हैं चतुराई तेरी, हँस के हर बार हँसाता है क्यों?
फिर नैन कटाक्ष चला कर के, बुझती हुई अग्नि जलाता है क्यों?
अरे! निष्ठुर व्यर्थ न छेड़ हमें, सुलझे मन को उलझाता है क्यों?

(१११)

पहिले कुछ प्रेम बढ़ा करके, फिर दूर खड़े मुसकाने लगे।
जब चाह हुई मिलने की जरा, तब आनन-चन्द्र छिपाने लगे॥
छिप नैन कटाक्ष चला कर के, घने घाव हिये में लगाने लगे।
विष अमृत घूँट पिलाने लगे, करुणानिधि होके सताने लगे॥

(११२)

पहिले मुख चन्द्र दिखा करके, फिर हाय! वियोग दिखाया है क्यों?
चरणामृत स्वाद चखा करके, विष का फिर प्याला पिलाया है क्यों?
बस एक ही वार हँसा करके, इस भाँति सदैव रुलाया है क्यों?
मन में जब मोह नहीं रखते, मनमोहन नाम धराया है क्यों?

(११३)

तुम आते नहीं मनमोहन! क्यों? इतना हमको ठुकराते हो क्यों?
यह प्राण पखेरू लगे उड़ने, तुम हाय! अभी सकुचाते हो क्यों?
हम पापी से पापी प्रचण्ड बड़े, हम ही कहते तुम गाते हो क्यों?
नहीं दीन पै आप दया करते, फिर दीनदयाल कहाते हो क्यों?

(११४)

रहता मन व्यर्थ मृतोपम सा, तुझे पाने की जो अभिलाषा न होती ।
इन आहों का कैसे मजा मिलता, तुझसे जो मिलो ये निराशा न होती ॥
उड़ते झट प्राण पखेरू मेरे, घबराहट एक भी माशा न होती ।
रहता ही भला यह जीवन क्यों? यदि दर्शन की कुछ आशा न होती ॥

(११५)

तजते घर बार वृथा सब क्यों? यदि मोहन तेरा इशारा न होता?
रहते हम भी भव-सागर में, पहिले जो किसी को उबारा न होता ?
हम रोते ही क्यों बिलखा करके, यदि तू मन प्राण हमारा न होता ?
इस प्रेम के पंथ में हाय! प्रभो! शिर देकर भी छुटकारा न होता ?

(११६)

अब आता ही होगा सलोना मेरा, बस मार्ग उसीका तका करते हैं ।
कविता सविता नहीं जानते हैं, मन में जो समाया बका करते हैं ॥
पड़ते उसके पद पंकज में, चलते चलते जो थका करते हैं ।
उसका रस रूप किया करते हैं, उसकी छबि-छाक छका करते हैं ॥

(११७)

इस ऊजड़ प्रेम की वाटिका में, फिर प्रेम प्रसून खिलादे कोई ।
वह मोती मनोहर नासिका का, मम सन्मुख आके हिलादे कोई ॥
हँस हेर जरा मुसकाकरके, इन नैनों से नैन मिलादे कोई ।
मरता हूँ तृषा से जिलादे कोई, चरणामृत हाय ! पिलादे कोई ?

(११८)

दृग की इस श्याम कनीनिका में, घनश्याम तुम्हीं को छिपाये रहूँ ।
पल मात्र को जाने न बाहर दूं, परदा पलकों का गिराये रहूँ ॥
बस चाह यही मनमोहन ! है, चरणों में सदा चित्तलाये रहूँ ।
सब भाँति तुम्हारा रहूँ मैं बना, तुमको अपना ही बनाये रहूँ ॥

(११६)

मन मन्दिर में शुभ सेज सजा, सुख पूर्वक श्याम ! सुला रहे हैं ।
प्रिय प्राणों के पुष्प चढ़ा करके, चरणों को दृगों से धुला रहे हैं ।।
नहीं भूलते नाम तुम्हारा कभी, पर आप तो यों ही भुला रहे हैं ।
सुनते तुम नाथ ! पुकार नहीं, कब से हम हाय बुला रहे हैं ।।

(१२०)

यदि कुन्तल काले सँवारे ही थे, तो कपोलों पै यों लटकाना न था।
जब कज्जल रेखा लगाई थी तो, तिरछे दृग बाण चलाना न था ।।
पहिना पटपीत मनोहर तो, हर बार उसे फहराना न था ।
यह सुन्दर वेश बनाया था तो, इस भाँति हमें तड़पाना न था ।।

(१२१)

मिलना ही अभीष्ट न था तुम को, मन माखन मेरा चुराना न था ।
दिखलाने वियोग के ये दिन थे, तब तो वह रास रचाना न था ।।
निज प्रेम की नाव चढ़ा कर के, मँझधार में हाय डुबाना न था ।
यदि जाना था नाथ तुम्हें मथुरा, नख पै गिरिराज उठाना न था ।।

(१२२)

तिरछा पटपीत लसै जिस में, नग नित्य नवीन जड़े रहते ।
मुख मण्डल के नित सन्मुख ही, शशि जान चकोर अड़े रहते ।।
छवि ऐसी मनोहर देख जरा, चरणों में तुम्हारे पड़े रहते ।
तुम स्वप्न में आके चले ही गये, कुछ देर तो हाय ! खड़े रहते ?

(१२३)

किस से अब प्रेम बढ़ा करके, किसके मन में कब क्या भरते हो ?
किसका दुख दारुण दैन्य कहो, मुख चन्द्र मनोहर से हरते हो ?
नहीं स्वप्न में पूछा कभी हमसे, तुम जीते हो या कि अभी मरते हो ?
हरेकृष्ण ! पुकार रहे कब से, हृदयेश ! विलम्ब कहाँ करते हो ?

(१२४)

ब्रज को तज के कहीं जायें नहीं, किया जेल में बन्द न देखते हो।
फिरते रहें पीछे तुम्हारे सदा, फिर भी दुख द्वन्द न देखते हो॥
हम को छलछन्दी बताते स्वयं, अपना छलछन्द न देखते हो।
मन लेकर के पहिले अब तो, दृग से ब्रजचन्द ! न देखते हो॥

(१२५)

लहराता हुआ तरु जीवन का, तुमने मनमोहन ! मोड़ दिया।
डसने के लिये भुजगावली का, भुजगेश भयंकर छोड़ दिया॥
हरेकृष्ण ! न दर्द अभी मिटता, कुछ ऐसा कलेजा मरोड़ दिया।
दिल दर्पण सा मम लेकर के, रख पत्थर ऊपर तोड़ दिया॥

(१२६)

तुम निष्ठुर हो इस बात के तो, हमें याद असंख्य प्रमाण रहें।
अति हर्षित होंगे बने हम जो, पद पंकज के पदत्राण रहें॥
क्षण ही क्षण में बिलखा करके, करते नित प्राण प्रयाण रहें।
उर में उलझे दृग बाण रहें, किस भाँति बता फिर प्राण रहें?

(१२७)

तुमने अभो नाथ ! सुना ही नहीं, इतना हम हाय ! पुकार चुके।
इस ओर न देखा कृपा करके, कर नित्य नई मनुहार चुके॥
किस भाँति रिझावें बता तुझ को, तन तो मन तो सब वार चुके।
तिरछे दृग सीधे हुये ही नहीं, विनती करके हम हार चुके॥

(१२८)

ब्रजमण्डल का ही सितारा नहीं, जगतीतल का उजियारा है तू।
मनमोहकता इतनी तुझ में, सबके मन को अति प्यारा है तू॥
यह जीवन क्यों न निछावर हो, जब जीवन का ही सहारा है तू।
किस भाँति विसारूँ बता तुझको, मनमोहन ! प्राण हमारा है तू॥

(१२६)

करते मद गंजन खंजन का, यह नैन तेरे कजरारे अहो !
कितने तुम सुन्दर हो लगते, पटपीत मनोहर धारे अहो !!
ब्रजमण्डल के तुम जीवन हो, ब्रजवासियों के तुम प्यारे अहो !
किस कुञ्ज में जाके छिपे कह दो, मनमोहन ! प्राण हमारे अहो !!

(१३०)

मुसकान से काम तमाम हुआ, तिरछे दृग क्यों अब तानता है ?
अति सुन्दर गोल कपोल तेरे, भृकुटी लकुटी पहिचानता है ?
परिणाम में दुःख को जानता है, पर हाय वही हठ ठानता है ?
बहुतेरा कहा पर तेरे बिना, मन मेरा न मोहन ! मानता है ?

(१३१)

वह मूकों की भाषा में था जो कहा, सब भूल गये कुछ याद भी है ?
हुई प्रेम में तेरे विचित्र दशा, हँसना कभी रोना प्रमाद भी है ?
नहीं पूरा किया जिसको हमने, भला ऐसा कोई इरशाद भी है ?
सच पूछो तो श्याम ! तुम्हारे यहाँ, है प्रसाद परन्तु विषाद भी है ?

(१३२)

भानु को कंज अनेक मिलैं, पर कंजन हेतु दिनेश तुम्हीं हो ।
मेघ को मोर अनेक मिलैं, पर मेघन हेतु जलेश तुम्हीं हो ॥
भूप को दास अनेक मिलैं, पर दासन हेतु नरेश तुम्हीं हो ।
आप को भक्त अनेक मिलैं, पर मेरे लिये हृदयेश ! तुम्हीं हो ॥

(१३३)

हम चातक हैं तुम स्वाती प्रभो ! हम रात्रि तुम्हीं रजनीश मेरे ।
हम कंज दिनेश समान तुम्हीं, प्रजा मैं हूं तुम्हीं अवनीश मेरे ॥
तुम वारिद हो हम मोर तेरे, लता मैं तो तुम्हीं हो शिरीष मेरे ।
हम सेवक तो तुम ईश मेरे, हम दास तुम्हीं जगदीश ! मेरे ॥

(१३४)

अनिमेष रहे तकते पथ को, पल एक निमेष गिराये नहीं।
बस दर्शन लोभ को लेकर के, उर और प्रलोभन लाये नहीं॥
घर बार कुटुम्ब सभी तज के, सुन निन्दा कभी घबराये नहीं।
सब भाँति निछावर प्राण किये, पर श्याम! अभी तुम आये नहीं॥

(१३५)

अपना दिल फूल सा देकर के, बदले में त्रिशूल को ले चुके हैं।
अब तो चलती कुछ आगे नहीं, दुख सिन्धु में नाव जो खे चुके हैं॥
लखते लखते मुख चन्द्र तेरा, नित नाजों को मोहन से चुके हैं।
अब प्राणोंको छोड़ के लेवेगा क्या,? सब तो तुझको हम दे चुके हैं॥

(१३६)

जिससे तरु शाश्वत हो उर में, उस प्रेम के बीज को बोया करेंगे।
पलकों के बिछाकर पाँवड़ों को, मनमोहन का मग जोया करेंगे॥
हम देखेंगे श्याम कहाँ तक यों, सुध मेरी बिसार के सोया करेंगे।
झुंझला कर बोल उठेंगे कभी, जब सन्मुख बैठके रोया करेंगे॥

(१३७)

मुखचन्द्र मनोहर देखे बिना, अब तो सुख मोहन होता नहीं।
तुम माया के वेश धरो कितने, पर मैं अब खाऊँगा गोता नहीं॥
सच मानो वियोग में आप के मैं, दिनमें जगता निशि सोता नहीं।
यदि चित्त चुराते नहीं तुम तो, इतना कभी भूल के रोता नहीं॥

(१३८)

ब्रजभूमि परिक्रमा के पथ में, तुम्हें ढूँढ़ने के लिये फेरा किया।
नहीं पाया तुम्हारा पता उर में, दुख शोक ने आकर डेरा किया॥
बढ़ी वेदना व्याकुलता इतनी, तुम ने पर ध्यान न मेरा किया।
दिन रोते ही रोते अँधेरा किया, फिर रोते ही रोते सबेरा किया॥

(१३६)

पहिनो मणि माल उरस्थल में, अति उज्वल हैं यह हेम के आँसू।
कुछ शोक विषाद नहीं इनमें, सुख शान्ति क्षमा भरे क्षेम के आँसू॥
हरेकृष्ण ! नवीन न बात कोई, यह तो निकले नित नेम के आँसू।
पद पंकज धोयेंगे आज तेरे, अविराम बहा कर प्रेम के आँसू॥

(१४०)

रुक जा रुक जा दृग धार ! अरी, कहीं आकर प्रीतम पेख न ले।
दुखिया दिल की विरहाग्नि व्यथा, उर में अपने अवरेख न ले॥
दुख दारुण मैं ही रहूँ सहता, वह सुन्दर श्याम परेख न ले।
अरे ! रोऊँ नहीं बिलखा करके, मुझे रोता हुआ कोई देख न ले॥

(१४१)

मुख सूख गया यदि रोते हुये, फिर अमृत ही बरसाया तो क्या ?
भवसागर में जब डूब चुके, तब नाविक नाव को लाया तो क्या ?
युग लोचन बन्द हमारे हुये, तब निष्ठुर! तू मुसकाया तो क्या ?
जब जीवन ही न रहा जग में, तब दर्शन आके दिखाया तो क्या ?

(१४२)

तकतीं रहीं बाट तुम्हारी सदा, निशिवासर वारि-विहारणी आँखें।
पर रूप अनूप निहारने की, नहीं हाय ! हुईं अधिकारणी आँखें॥
कुछ और विशेष न चाहती हैं, बस दर्शन की उपकारणी आँखें।
मुसकान की भीख दे डाल जरा, दुखिया खड़ीं द्वार भिखारणी आँखें॥

(१४३)

पटपीत छटा लपटा करके, यह माया का बन्धन छोरने वाले !
निज नासा के मोती मनोहर से, सुख-सिन्धु में चित को बोरने वाले !!
मधुरे स्वर बोल सुना सब के, श्रवणों में सुधारस घोरने वाले !
इस ओर भी देख जरा हँस के, रस-लम्पट औ चित चोरने वाले !!

(१४४)

रँग प्रेम भरा बरसा करके, बरसों की बियोग व्यथा हर दे।
मन मेरा मयूर सा नाच उठे, कुछ भावना भाव नया भर दे॥
जलती इस छाती की ज्वाला मिटे, अपना पद कंज जरा धर दे।
हँस दे हँस दे दृग फेर अरे, नट नागर! नेक कृपा कर दे॥

(१४५)

बस लेते हो प्राण हमारे अभी, कहने के लिये तो किशोर भी हो।
हम खोजें कहाँ छिपते फिरते, इस ओर कभी उस ओर भी हो॥
हम तो कहते डर है न हमें, मन माणिक के तुम चोर भी हो।
जितने तुम सुन्दर मोहन हो, उतने ही विशेष कठोर भी हो॥

(१४६)

इन प्यासे पपीहे से लोचनों को, निज दर्शन स्वाति पिला जा जरा।
यह माया मरीचिका दूर हटा, दृढ़ प्रेम का पाठ पढ़ा जा जरा॥
नव नीरद वेश लिये मुरली, इन नैनों के बीच समा जा जरा।
अरे! निष्ठुर मोहन आ जा जरा, वह रूप अनूप दिखा जा जरा॥

(१४७)

अति सुन्दर रूप दिखा उर में, अभिलाषा अपूर्व उठा कर के।
छिपने लगे कुंजन कुंजन में, मुरली ध्वनि मंजु सुना कर के॥
सब त्याग तुम्हारे हुये फिर भी, तुम आये नहीं अपना कर के।
कहो निष्ठुर मोहन! पावोगे क्या? मुझे मिट्टी में व्यर्थ मिला कर के॥

(१४८)

इस जीवन के तुम जीवन हो, ब्रजचन्द! तुम्हें कितना समझाऊँ?
दुख होता महान तुम्हारे बिना, इस प्रेम-कथा को कहाँ तक गाऊँ?
हँस देते हो आप तो यों ही प्रभो! जब मैं अपना दिल दर्द सुनाऊँ?
रहते यदुवीर! तुम्हीं इस में, किस भाँति कलेजे को चीर दिखाऊँ?

(१४६)

यह प्रेम की कैसी बिडम्बना है, दिल से दिलदार ! बताओ तुम्हीं।
यदि मेरी ही भूल है वास्तव में, तो कृपा करके समझाओ तुम्हीं॥
भय लज्जा किसी की नहीं अब तो, हरेकृष्ण ही कृष्ण कहाओ तुम्हीं।
यदुवीर ! शरीर ये आपका है, इसे मारो तुम्हीं या जिलाओ तुम्हीं॥

(१५०)

कल कुंचित केश सँवारे हुये, अथवा भुजगाधिप काले पड़े।
तुम्हीं प्राण अधार हो मेरे लिये, तुम्हें एक से एक निराले पड़े॥
लखते लखते पथ नैन थके, कहते कहते मुख छाले पड़े।
तुम लालबिहारी ! न आये अभो, मम जीवन के यहाँ लाले पड़े॥

(१५१)

छवि उज्वल क्यों तन कारे भये, तुम को है लगा अभिशाप मेरा।
सुन लो स्वयमेव बजा करके, मुरली ध्वनि में है प्रलाप मेरा॥
अब नेक दयालु हुये तुम जो, इन आहों ही का है प्रताप मेरा।
नहीं जानना काव्य-कलाप मेरा, पद ही पद में है प्रलाप मेरा॥

(१५२)

चित चोर ! छिपोगे कहाँ तक यों, हमें शान्ति नहीं प्रगटाये बिना।
हम छोड़ेंगे ध्यान तुम्हारा नहीं, नहीं मानेंगे श्याम बुलाये बिना॥
नहीं छाती की ज्वाला मिटेगी प्रभो ! तुम को इससे लिपटाये बिना।
यह जीवन प्यास बुझेगी नहीं, चरणामृत प्यारे पिलाये बिना॥

(१५३)

हम देखेंगे दर्शन देने हमें, कबलों तुम मोहन ! आते नहीं।
तुम आवोगे नाथ ! नहीं जब लों, तब लों हम भोजन पाते नहीं॥
बश और विशेष हमारा है क्या ? बिनती कुछ और सुनाते नहीं।
हम रक्खेंगे प्राण नहीं अपने, यदि दर्शन आप दिखाते नहीं॥

(१५४)

अभी आओ न आओ परन्तु प्रभो! तुम्हें आना ही होगा कभी न कभी।
यदि भक्त हैं प्यारे तुम्हें मन से, हँस जाना ही होगा कभी न कभी॥
हरेकृष्ण! मेरे उलझे दिल को, सुलझाना ही होगा कभी न कभी।
वह रूप अनूप दया करके, दिखलाना ही होगा कभी न कभी॥

(१५५)

बलि जाऊँ सदा इन नैनन की, बलिहार छटा पर होता रहूँ।
कभी भूलूँ न याद तुम्हारी प्रभो! चाहे जागृत स्वप्न या सोता रहूँ॥
हरेकृष्ण ही कृष्ण पुकारा करूँ, मुख आँसुओं से नित धोता रहूँ।
ब्रजराज! तुम्हारे वियोग में मैं, बस यों ही निरन्तर रोता रहूँ॥

(१५६)

करते हुये ध्यान तुम्हारा प्रभो! अभी सोये थे प्रेम में रोते ही रोते।
नहीं किंचित भी व्यवधान पड़ा, मिल दृष्टि गई फिर सोते ही सोते॥
बना पागल प्रेमी तुम्हारा रहूँ, मिटे कृष्ण कलंक न धोते ही धोते।
यह प्राण विसर्जन अन्त में हों, मुखचन्द्र के दर्शन होते ही होते॥

(१५७)

किस भाँति बयान करें उस को, सुख जो शरणागत होने में है।
मुख से निकले हरेकृष्ण हरे, कुछ हर्ष नया उस रोने में है॥
अति शीतलता अति सुन्दरता, उन आँसुओं से मुख धोने में है।
ब्रजराज वियोग में रोते हुये, रस अद्भुत प्राणों के खोने में है॥

(१५८)

यह जीवन व्यर्थ गया इतना, कुछ आया अभी तक हाथ नहीं।
कट जाये तुरन्त तो उत्तम हो, चरणों में झुका यदि माथ नहीं॥
किस के हम साथ रहें जग में, रहते जब मोहन साथ नहीं।
किस हेतु जियें इस जीवन में, मिलते जब जीवन नाथ नहीं॥

(१५९)

जग दोषी कहे कितना ही हमें, हम को उस को परवाह नहीं।
प्रभु-प्रेम-पयोधि अगम्य बड़ा, इस में सब पाते हैं थाह नहीं॥
हँसते हँसते यह जीवन दें, मुख से निकले पर आह नहीं।
बस चाह है कृष्ण के दर्शन की, अब और रही कुछ चाह नहीं॥

(१६०)

मत देख वियोगी की दीन दशा, लख के इस को घबरायेगा तू।
जलती वड़वाग्नि उरस्थल में, लपटों से वृथा जल जायेगा तू॥
बस स्वप्न की झाँकी मनोहर है, चल के पग से दुख पायेगा तू।
घट जायेगी प्रेम की व्याकुलता, यदि पास निरंतर आयेगा तू॥

(१६१)

मुरलीधर की मुरली ध्वनि का, यह शब्द हुआ घनघोर कहाँ!
नहीं जान पड़े उस चंचल की, कसके दिल में दृग कोर कहाँ!!
पहिले मम चित्त चुरा कर के, अब हाय! गया चितचोर कहाँ!
जिसने मन प्राण हमारे लिये, वह सुन्दर नन्द-किशोर कहाँ!!

(१६२)

चित चोर ने चित्त चुराया मेरा, हरेकृष्ण! गया फिर भाज कहाँ?
ब्रज-मण्डल के युवराज बिना, सुख का सब साज समाज कहाँ?
अब और सुहाता नहीं कुछ भी, जब लाग गई तब लाज कहाँ?
दुखिया पर हाय! दया कर के, बतलादे कोई ब्रजराज कहाँ?

(१६३)

गरजे घनघोर घमण्ड किधौं, सखि! बाँसुरी चाहत कीन्हीं कटा है?
यह सुन्दर बुन्द की धार गिरो, छवि शाल कि मोतिन माल छटा है?
चपला चमकी नभ-मण्डल में, फहरानी किधौं प्रभु पीत पटा है?
हरेकृष्ण! कहाँ समुझाय कोऊ, घनश्याम किधौं यह श्याम घटा है?

(१६४)

श्रुति ज्ञान के यान असंख्य चढ़े, पर प्रेम समुद्र का छोर न पाया।
कहते मुखचन्द्र अनेक मिले, पर चन्द्र का सच्चा चकोर न पाया॥
कई साधक सिद्ध तो देखे यहाँ, पर भाव में कोई विभोर न पाया।
वन मन्दिर कुञ्ज कुटीर लखे, कहीं सुन्दर नन्द किशोर न पाया॥

(१६५)

वह कौन मनुष्य धरातल में, जिसे मोहन वेश है भाया नहीं ?
सब साँवले रूप के बावले हैं, पर रूप किसी को दिखाया नहीं ?
हरेकृष्ण छिपा मन-मन्दिर में, दिखलाई पड़ी पर छाया नहीं ?
वह माया का पर्दा हटा कर के, कभी स्वप्न में सन्मुख आया नहीं ?

(१६६)

सब तंत्र औ मंत्र क्रिया विधि से, मुरलीध्वनि मंत्र प्रयोग बड़ा है।
हरेकृष्ण ! सभी रस व्यंजनों से, अधरामृत-मोहन-भोग बड़ा है॥
जग में कहीं औषधि है ही नहीं, सब रोगों से प्रेम का रोग बड़ा है।
जिसे योगी पतञ्जलि ने विरचा, उस योग से कृष्ण-वियोग बड़ा है॥

अन्योक्ति —

(१६७)

नहीं चित्र लखा न चरित्र सुना, वह सुन्दर श्याम को माने ही क्या ?
मन में न बसा मनमोहन तो, वह ठान किसी पर ठाने ही क्या ?
जिस बन्दर ने इमली ही चखी, वह स्वाद-सुधा पहिचाने ही क्या ?
जिसने कभी प्रेम किया ही नहीं, वह प्रेम की आहों को जाने ही क्या ?

(१६८)

जिससे रथ हाँका था पारथ का, वह त्यागमयी अनुरक्ति कहाँ है ?
करदें मन प्राण निछावर जो, वह पावन-प्रेम-प्रसक्ति कहाँ है ?
किस में प्रहलाद सी है दृढ़ता, ध्रुव की ध्रुवता वह शक्ति कहाँ है ?
भगवान खड़े मिलने के लिये, पर भक्तों के भीतर भक्ति कहाँ है ?

(१६९)

समझे इसे भावुक भक्त कोई, नहीं जान सकें नर नीरस सूखे।
सुधी सज्जन साधु-सनेही सदा, अभिमानियों से रहते नित रूखे॥
तज मेवा समस्त सुयोधन के, विदुरेश के साग अलोने से तूखे।
वह चाहते और नहीं कुछ भी, भगवान हैं केवल भाव के भूखे॥

(१७०)

इस माया के घोर जलाशय से, अरे! बाहर नेक कढ़ो तो जरा।
निज जीवन लक्ष्य बना करके, उस लक्ष्य की ओर बढ़ो तो जरा॥
किस कारण दूर खड़े डरते, तरु प्रेम खजूर चढ़ो तो जरा।
वह सुन्दर श्याम मिलेगा तुम्हें, तुम प्रेम का पाठ पढ़ो तो जरा॥

(१७१)

जब प्रेम के पंथ में पैर दिया, तब क्या उसके दुख से डरना है।
जल भोजन की मत चाह करो, तलवार तले शिर को धरना है॥
बस याद में रोते हुये उन की, निज प्राण विसर्जन भी करना है।
वह आशा निराशा लिये अपनी, कभी जीना है मित्र! कभी मरना है॥

(१७२)

उनकी तलवार चले तो चले, तुम गर्दन नीचे किये रहना।
तजना मधुशाला कदापि नहीं, प्रभु प्रेम का प्याला पिये रहना॥
यह प्रेम का पंथ भयानक है, निज हाथ में प्राण लिये रहना।
कहदें मरना तो मरे रहना, कहदें जो जिओ तो जिये रहना॥

(१७३)

छल छोड़ के, चाहता जो उसको, छलिया भी उसी को चहा करता है।
दिखलाता उसे छवि की किरणें, जिसका दिल दर्द दहा करता है॥
हरेकृष्ण! हमारा सनेही सखा, कुछ मीठी सी बात कहा करता है।
जिन नैनों से नीर बहा करता, उन नैनों में श्याम रहा करता है॥

(१७४)

वह पायेगा क्या रस का चसका, नहीं कृष्ण से प्रेम लगायेगा जो।
हरेकृष्ण ! इसे समझेगा वही, रसिकों की समाज में जायेगा जो॥
ब्रज धूल लपेट कलेवर में, गुण नित्यकिशोर के गायेगा जो।
हँसता हुआ श्याम मिलेगा उसे, निज प्राणों की भेंट चढ़ायेगा जो॥

(१७५)

यह जीवन नन्द यशोदा का है, ब्रज की रज का यश निर्मल है।
यह प्राणों का प्राण है प्रेमियों का, ब्रज का धन निर्बल का बल है॥
यह काजल है किन्हीं लोचनों का, जल हीन मरुस्थल का जल है।
ब्रज जीवन से बस प्रेम करो, जग में यह जीवन का फल है॥

विरक्ति—

(१७६)

प्रभु को पहिचाना जिन्होंने नहीं, उनसे कुछ भी कहना ही नहीं है।
सुखी निर्भय क्यों न रहे जिसने, पट मोह कभी पहना ही नहीं है॥
हम तो इस माया से ऊब गये, अब दुःख नया सहना ही नहीं है।
यहाँ प्रेम औ वैर करें किस से, जग में तो सदा रहना ही नहीं है॥

(१७७)

वह कृष्ण महौषधि चाहेगा क्यों ? जिसे प्रेम का बात औ पित्त नहीं है।
अपने मन की यह भावना है, इसमें कुछ शास्त्र निमित्त नहीं है॥
हरेकृष्ण ! समस्त धरातल में, हरि नाम सा उत्तम वित्त नहीं है।
हुआ लाभ क्या जीवन में प्रभु के, चरणों में चढ़ा यदि चित्त नहीं है॥

(१७८)

कभी उन्नति मित्र न हो सकती, दृढ़ साधन कीर्तन नेम विना।
हरेकृष्ण ! न ध्यान अखण्ड लगे, बन निर्जन नीरव क्षेम विना॥
जल हीन सरोवर व्यर्थ है ज्यों, छवि क्षीण विभूषण हेम विना।
नर जीवन नीरस निष्फल त्यों, प्रभु के पद-पंकज प्रेम विना॥

(१७६)

दृढ़ साधन कोई भी होगा नहीं, इस शत्रु मनोज को मारे विना।
कभी इष्ट की सिद्धि न हो सकती, यदि कार्य करोगे विचारे विना॥
भवसिन्धु कदापि तरोगे नहीं, प्रभु के पद-पोत सहारे विना।
सुख शाश्वत और मिलेगा कहाँ, ब्रजभूषण नन्ददुलारे बिना॥

(१८०)

कह रूप अनूप सके हरि का, कवियों की मनोहर उक्ति न कोई।
भवसागर से तरने के लिये, हरिनाम के नाव सी युक्ति न कोई॥
प्रभु के पद-पंकज-प्रीति बिना, नर जीवन की फल भुक्ति न कोई।
जमुनातट श्रीवन बास मिले, इससे बढ़ के जग मुक्ति न कोई॥

(१८१)

अरे! अस्थि औ मांस की देह बनी, वृथा चर्म पै मोहित क्यों मन होता?
यह माया महा दुख दायिनी है, तज-अमृत क्यों विष से मुख धोता?
उसी जाल के बंधन में फँस के, हरबार वहीं पछिताकर रोता?
अब तो भज मूढ़ दयानिधि को, कब से भवसिन्धु में खा रहा गोता?

(१८२)

जब चिन्तन कृष्ण स्वरूप का हो, तब जागृत हो बड़े भाग की भावना।
अलि तेरे भों चित्त चढ़ेगी कभी, प्रभु के पद कंज पराग की भावना॥
हरेकृष्ण! वही है सुखी जग में, जिसके मन में दृढ़ त्याग की भावना।
कई जन्म के पुण्य से मित्र कहीं, उपजे उर में अनुराग की भावना॥

(१८३)

रहती मिलने के लिये उनके, मुखमण्डल पै छवि छाई महा।
कुछ दोष कदापि नहीं उनका, वह प्रेमी हैं सच्चे सदाई महा॥
फँसा काम औ क्रोध में मैं ही स्वयं, परिवार से मोह बढ़ाई महा।
मनमोहन से मिलने में अहो! यह माया हुई दुखदाई महा॥

(१८४)

हरिनाम है केवल नित्य यहाँ, सब विश्व अनित्य विचारना सीखो।
पर निन्दा असत्य बिबाद तजो, मुख से हरेकृष्ण उचारना सीखो॥
निज नैन चकोर बना करके, मनमोहन रूप निहारना सीखो।
प्रणयेश अवश्य मिलेगा तुम्हें, तुम प्रेम से नेक पुकारना सीखो॥

(१८५)

फँस जाना न बीच में मित्र! कहीं, द्युति दारा की दुर्गम घाटिका में।
हरेकृष्ण! न चंचल चित्त करो, मणि कंचन हेम बराटिका में॥
निशिवासर सात्विक भाव उठें, नव कीर्त्तन नर्त्तन नाटिका में।
व्रजराज के संग विहार करो, अति अद्भुत प्रेम की बाटिका में॥

(१८६)

सुधी साधुओं की सतसंगति हो, ब्रजवास मिले जमुना का किनारा।
वश में सब इन्द्रियाँ हों अपनी, मन में हो बसा मनमोहन प्यारा॥
निशिवासर नाम जपे रसना, उठें भावनये नित कीर्त्तन द्वारा।
हरेकृष्ण! सदा उर उर्वरा पै, बहती रहे प्रेम समुद्र की धारा॥

(१८७)

अभिराम छटा लखने के लिये, इन लोचनों को ललचाये रहे।
दृगपात्र में रूप सुधा भर के, नित प्रेम का प्याला पिलाये रहे॥
करता रहे कोर कृपा की जरा, निज दास सदैव बनाये रहे।
बस स्वार्थ है एक हमारा यही, वह श्याम हमें अपनाये रहे॥

(१८८)

करते जो कठोरता हैं उससे, मम हार्दिक प्रेम समुद्र को थाहते हैं।
छिपते हरबार जो कुंजन में, तन की मन की दृढ़ता अवगाहते हैं॥
चलते मिलने के लिये हम तो, वह भी उसओर भुजायें उमाहते हैं।
जितना हम चाहते हैं उनको, उतना ही विशेष हमें वह चाहते हैं॥

(१८६)

खग को मृग को तक मोह लिया, सुर किन्नर नाग तथा नग को ?
हमतो अब ध्यान में मग्न तेरे, रख ध्यान तुही अपने मग को ?
कुछ दोष हमारा नहीं इसमें, कहना जिसको हो कहे ठग को ?
मन एक है मित्र ! हमारा कहो, घनश्याम की याद करें कि करें जगको ?

(१६०)

जगदीश से नाता जुड़ा जब है, तब क्या जग की परवाह करें ?
बस याद में रोते हुये उनको, पलकों पर अश्रु प्रवाह करें ?
उतनी वह दूर भगें हमसे, जितनी उनकी हम चाह करें ?
सुख अद्भुत प्रेम की पीड़ा में है, हम आह करें वह वाह करें ?

(१६१)

तुम व्यापक हो सब ठौर यहाँ, इस कारण विश्व को मानते हैं।
गिरजाते हैं वीर हजारों दफे, पर ठान वही फिर ठानते हैं ॥
हरेकृष्ण ! मनोमयी मूर्त्ति बना, तुम से तुम को पहिचानते हैं।
बस जानते नंद के लाड़िले को, हम और नहीं कुछ जानते हैं ॥

(१६२)

अपने गुण रूप अनूप दिखा, गुण तोड़ दिये भव-फन्दन के।
अति लज्जित होते विलोकत ही, गति मन्थर बाल गयन्दन के ॥
हरेकृष्ण ! मनोहर मोहन के, जग बन्दन दुःख-निकन्दन के।
निशिवासर चित्त में वास करें, पद पंकज नन्द के नन्दन के ॥

(१६३)

इस कंचन कामिनी के भ्रम में, फँस जाता हूँ मैं हरबार प्रभो !
परिणाम में दुःख को जानके भी, करता नहीं सोच विचार प्रभो !
मन निश्चल हो चरणों में तेरे, इस दुर्जय मार को मार प्रभो !
निज प्रेम की भिक्षा प्रदान करो, तुम प्रेम के हो अवतार प्रभो !

(१६४)

किस भाँति कठोर कहें तुमको, रहते निशिवासर साथ तुम्हीं।
जब कोई सहारा नहीं मिलता, तब हाय! लगाते हो हाथ तुम्हीं॥
तब जीत सकें हम मन्मथ को, जब फेरो कहीं मन माथ तुम्हीं।
हम तो निज स्वार्थ के साथी प्रभो! अवतार हो प्रेम के नाथ तुम्हीं॥

(१६५)

भवसागर में चलता फिरता, गिरता पड़ता थका हारा हूँ मैं।
भली भाँति सभी फल चाख चुका, चाहता इससे छुटकारा हूँ मैं॥
सब ओर से होके निराश प्रभो! तकता अब तेरा सहारा हूँ मैं।
प्रभु मारो या तारो करो कुछ भी, अब तो सब भाँति तुम्हारा हूँ मैं॥

(१६६)

जिस भाँति बुलाते हो नाथ! हमें, उस भाँति कदापि पठाना नहीं।
कुछ देना न दर्शन छोड़ कभी, निज भक्ति से चित्त हटाना नहीं॥
इस माया में फेर फँसा करके, हरेकृष्ण! स्वधर्म गिराना नहीं।
रहना मम चित्त में वास किये, करुणानिधि! भूल भुलाना नहीं॥

(१६७)

यह देह है मन्दिर व्याधियों की, दुख कष्ट अनेक निरन्तर पाये।
किसी रोज न सुस्थिर शान्ति मिली, गये काम औ क्रोध से नित्य सताये॥
निशिवासर आयु भी क्षीण हुई, शिर ऊपर मृत्यु खड़ी मुख बाये।
अब तो करुणानिधि रक्षा करो, सब छोड़ तेरी शरणागत आये॥

(१६८)

दिव्य सनेह समेत सुधामय, चाव का चूना लगाया हुआ है।
दर्शन की अभिलाषा निरन्तर, खैर सुपारी मिलाया हुआ है॥
प्रीति की रीति मसाला मनोहर, ध्यान का वर्क चढ़ाया हुआ है।
तन्दुल भेंट समान ये लीजिये, प्रेम का पान बनाया हुआ है॥

(१६६)

मुझे दर्शन दे अपनी छवि का, भय लज्जा का वस्त्र हटाले जरा।
यह बेड़ा पड़ा भवसागर में, मँझधार से पार लगाले जरा॥
रज में रज हो, जल में जल हो, निज तेज में तेज मिलाले जरा।
बिनती यदुवीर! यही तुझ से, यह चीर शरीर चुराले जरा॥

(२००)

निशिवासर पीड़ित शत्रु करैं, उठो चक्र सुदर्शन पेखो सही।
मिटती नहीं मार्मिक वेदना है, जड़ से इसे काट परेखो सही॥
हरेकृष्ण! सुधारस वृष्टि करो, करुणा भरी दृष्टि से लेखो सही।
सब भाँति विहीन मलीन हुये, इस दीन की ओर तो देखो सही॥

(२०१)

निज सत्य सनेह सुधा भर के, फिर जीवन-ज्योति जगा दे कोई।
मृगतृष्णा-तरंग से दूर हटा, पदपंकज-प्रेम पगादे कोई॥
सफरी सम इन्द्रियाँ काट रहीं, दुख दारुण दूर भगा दे कोई।
भव सागर में बह नाव चली, मँझधार से पार लगा दे कोई॥

(२०२)

दिल को दिलदार चुरा कर के, अब क्यों इसको फिर त्यागता है?
अपनी इस वस्तु के रक्षण को, बता क्यों न सचेत हो जागता है?
रख पास सदा अपने ही इसे, अभी माया की ओर ये भागता है।
जिस का बड़ा भाग्य है होता वही, चरणों में तेरे अनुरागता है॥

(२०३)

विष लोग हलाहल को समझें, अब जानत लक्ष्मी को प्राण पियारी।
विष पै न हलाहल वास्तव में, ये रमा है अवश्य महाविषधारी॥
झट पान हलाहल को करि के, सुख पूर्वक जागि रहे त्रिपुरारी।
पर पाँय छुये ते रमा के लखो, हरि सोवत संतत पाँय पसारी॥

(२०४)

दिन रात प्रलोभन सन्मुख हैं, ब्रजराज ! मिटे यह वासना कैसे ?
'अहमस्मि' का भाव भरा उर में, प्रभु आप की हो अनुशासना कैसे ?
जब सच्चा सुसाधन है ही नहीं, तब आये कहीं से प्रकासना कैसे ?
मन को तो मनोज तजे ही नहीं, फिर भाये तुम्हारी उपासना कैसे ?

(२०५)

गुरु वृन्द तो पूज्य हमारे सदा, उनका पथ क्यों अवरोध करें ?
परमेश्वर अंश हैं जीव सभी, किस जीव के ऊपर क्रोध करें ?
सब ठौर तुम्हीं तुम व्यापक हो, अपने मन में यदि बोध करें ?
सम भाव सभी में समस्थित हो, फिर क्यों हम प्रेम विरोध करें ?

(२०६)

कुछ शोक सवार सा है दिलमें, वह हर्ष की तुङ्ग तरङ्ग नहीं।
नहीं जान पड़े किस सोच में हूँ, उठती अब वैसी उमङ्ग नहीं॥
मृग तृष्णा के पीछे पड़ा प्रभु में, रमता मम चित्त कुरङ्ग नहीं।
हरेकृष्ण की होली में आज सखे ! वह राग नहीं वह रङ्ग नहीं॥

(२०७)

अहो ! जाना है दूर बड़ी हम को, किस माया की नींद में सो रहा हूँ।
अपने कर से अपने ही लिये, अपने मग कंटक बो रहा हूँ॥
जपता मुख से हरि नाम नहीं, समै यों ही ये व्यर्थ में खो रहा हूँ।
लगता नहीं ध्यान पदाम्बुज में, अपने दुरभाग्य को रो रहा हूँ॥

(२०८)

करते दिन रात जो पाप नये, वह नाथ ! सभी तुम जानते हो ?
किस भाँति छिपायेंगे दुर्गुणों को, उर अन्तर की पहिचानते हो ?
जग वंचकता लख मेरी प्रभो ! मन रंचक क्षोभ न आनते हो ?
अब तो दुख दारुण दूर करो, अपना कर के यदि मानते हो ?

(२०६)

अपराध अनन्त क्षमा करके, समझो अपना शिशु जातक सा।
गृह जाल का बन्धन दूर करो, यह पीछे लगा महा पातक सा॥
हरेकृष्ण! अवश्य मनोज मिटे, रहता दिन रात जो घातक सा।
फिर स्वाती के विन्दु बनो तुम तो, बन जाऊँ तुम्हारा मैं चातक सा॥

(२१०)

जमुना तट रम्य बनी कुटिया, जहाँ वायु सुगन्धित आ रही हो।
हरेकृष्ण ही कृष्ण के कीर्त्तन की, ध्वनि स्वर्ग से ऊपर जा रही हो॥
बहती जलधार विलोचनों में, छवि मोहन की मन भा रही हो।
कर आत्म समर्पण पूर्णतया, सुख आत्मा अलौकिक पा रही हो॥

(२११)

प्रभु पूर्ण प्रतिज्ञा हमारी करो, कहीं व्यर्थ न हो उपहास मेरा।
कई जन्म से प्यारे मिला ही नहीं, चरणामृत-भोग विलास मेरा॥
किस कारण क्यों किन शत्रुओं से, रुका उन्नति-पन्थ-विकास मेरा।
हृदयेश्वर! क्या नहीं जानते हो, सब जीवन का इतिहास मेरा॥

(२१२)

मिले रौरव नर्क निवास भले, किसी दुष्ट का स्वप्न में संग न हो।
पथ प्रेम में विघ्न अनेक पड़ें, पर नीचो कदापि उमंग न हो॥
व्रतवन्ध सदैव अखण्ड रहे, विषयों में कभी मन रंग न हो।
जल जायें चिताग्नि में जीवित ही, पर नाथ! कभी व्रत भंग न हो॥

(२१३)

अपना कर के अपने ही लिये, मन वाणी समेत शरीर बना दो।
शुभ शक्ति अमोघ प्रदान करो, बल दे अपना बलवीर बना दो॥
पद-घर्षण घोर प्रवर्षण हो, दृढ़ शैल समान सुधीर बना दो।
निज दर्शन हेतु अधीर बना, यदुवीर! हमें प्रणवीर बना दो॥

(२१४)

दृढ़ प्रेम के पंथ में नित्य प्रभो ! पड़ें विघ्न अनेक गरिष्ठ परस्पर ।
ब्रज मण्डल में जिस भाँति हुये, पद-प्रेमी तुम्हारे बलिष्ठ परस्पर ॥
हरेकृष्ण ! विचार थके सब ही, मुनि गौतम व्यास वशिष्ठ परस्पर ।
कभी टूटे न मोहन ! ऐसा करो, यह बन्धन प्रेम घनिष्ठ परस्पर ॥

(२१५)

सब से पहिले तुम दर्शन दो, फिर भक्ति-सुधा-रस पान भी दो ।
हम धारण वीर्य अखण्ड करें, गति आयु यथेष्ट का दान भी दो ॥
धन रक्षण शक्ति यथेच्छ मिले, नर पुङ्गवों की कुछ शान भी दो ।
यह जीवन नाथ ! दिया यदि तो, हरि कीर्त्तन का अभिमान भी दो ॥

(२१६)

कलिकाल में जीवन ही कितना, फिर विघ्न अनेक सताते रहें ।
कभी स्वास्थ्य खराब हुआ तो कभी, धन जीविका को पछिताते रहें ॥
वश में मन चंचल होता नहीं, कितने ही उपाय कराते रहें ।
करुणानिधि ऐसी करो करुणा, पद कंज कभी सुध आते रहें ॥

(२१७)

दुख में करें याद तुम्हारो प्रभो, सुख में उनमत्त हो झूमते हैं ।
पल एक भी शान्ति नहीं मिलती, पड़े माया के झूम में झूमते हैं ॥
हरेकृष्ण ! अनेक कुयोनियों में, चिरकाल से मोहन घूमते हैं ।
अब तो प्रभु देखो दया कर के, पद-पंकज प्रेम से चूमते हैं ॥

(२१८)

इस मोह निशा को मिटा के प्रभो, कब माया के चोर विनाश करोगे ?
हरि भक्ति विहंगम बोल उठें, दुख शोक के तारा विनाश करोगे ?
मुख चन्द्र चकोर मिलाते हुये, सुख शान्ति-सरोज-विकाश करोगे ?
मनमोहन ! प्यारे कृपा कर के, कब ज्ञान का सूर्य प्रकाश करोगे ?

(२१६)

कभी सुस्थिर साधन होता नहीं, अति चंचल नाथ! विचारणा मेरी।
पर निश्चित लक्ष्य हुआ सो हुआ, कितनी ही भले हो प्रतारणा मेरी ।।
मद मोह मनोज करेंगे कहा ? इन शत्रुओं को है प्रचारणा मेरी ।
अब ध्येय कदापि तजेंगे नहीं, बस निश्चल है, ध्रुव धारणा मेरी ।।

(२२०)

अहमस्मि का भाव मिटा करके, अब आज्ञा तेरी शिरोधार्य करेंगे।
हम आर्यों की सन्तति हैं इससे, सब दूर विचार अनार्य करेंगे ।।
हरेकृष्ण ! निरन्तर निर्भय हो, अनुशासन को अनिवार्य करेंगे ।
मन वाणी औ कर्म सभी विधि से, जो कहोगे वही हम कार्य करेंगे ।।

(२२१)

अब व्यर्थ न वाद विवाद करो, हरेकृष्ण! सदा दुख ही सहने दो।
प्रभु प्रेम के शीतल सागर में, मत रोको हमें सुख से बहने दो ।।
लख माधुरी मूरति मोहन की, कुछ तो फल लोचनों का लहने दो ।
हम तो लखते यदुनन्दन को, कहते जो कुवाक्य उन्हें कहने दो ।।

(२२२)

पय सिन्धु का दूध फटेगा नहीं, तुम नींबू का अर्क मिलाते रहो ।
यह शैल सुमेरु हिलेगा नहीं, तुम लाखों मनुष्य हिलाते रहो ।।
कुछ पानी में भेद पड़ेगा नहीं, तुम लाठियाँ खूब चलाते रहो ।
ब्रजराज से प्रेम घटेगा नहीं, तुम निन्दा करो या कराते रहो ।।

(२२३)

चले आँधी यहाँ अधिकारियों की, उड़े निर्भय होकर चङ्ग कहाँ से ?
वह कृष्ण कठोर न रीझता है, बढ़े प्रेम पयोधि तरङ्ग कहाँ से ?
सखे ! जीविका की परतंत्रता में, उठें भाव स्वतंत्र उमङ्ग कहाँ से ?
सविता सम पेट की ज्वाला जले, कविता में रहे फिर रङ्ग कहाँ से ?

[अपूर्ण]

वृन्दाबन-शतक

——:o:——

(कवित्त)

जय हो सदैव श्री गोविन्ददेव जी की तथा,
जय हो गोपीनाथ ब्रह्मचारी की जय हो।
जय हो राधारमण और राधावल्लभ को,
जय हो श्री रङ्ग जी की टिकारी की जय हो॥
जय हो अष्ट सखी नन्द-भवन की जय हो,
जय मदनमोहन मुरारी की जय हो।
जय हो सदा श्री वंशीवट विहारी की और,
जय हो सदा श्री बाँकेविहारी की जय हो॥ १॥

ब्रज में प्रवेश करते ही कर्ण कुहरों में,
करती प्रवेश ध्वनि राधे राधे श्याम की।
ज्यों ज्यों पग आगे पड़ते पवित्र पत्तनों में,
सुनते सरस ब्रजभाषा ग्राम ग्राम की॥
पथपथ में करीलों के कलित कुञ्ज सोहैं,
सहसा सुध आ जाती प्यारे घनश्याम की।
छाती भर आती हाय! गरिमा गुणों की देख,

कीर्त्तन के यूथ देख उठती उमंग एक,
गोबर्द्धन को देख गोबर्द्धन धरैया की।
भूल जाता ज्ञान सभी देख ज्ञान गुदड़ी को,
चीर घाट देख कर चीर के चुरैया की॥
सेवा कुञ्ज देख सुध होती श्यामसुन्दर की,
वंशीवट देख देख वंशी के बजैया की।
जमुना हिलोरैं देख हिलता हृदय हाय,
कालीदह देख याद आती है कन्हैया की॥ ३॥

एक से एक बड़े रसिकों के निवास जहाँ,
एक से एक बड़े रहते तत्व-ज्ञानो हैं।
एक से हैं एक बड़े उद्भट विद्वान् जहाँ,
एक से एक बड़े जहाँ प्रेमाभिमानी हैं॥
एक से एक दिव्य विभूतियाँ विराजमान,
त्यागी अनुरागी जहाँ बड़े बड़े दानी हैं।
ऐसी श्री वृन्दाटवी के राजा नन्दनन्दन हैं,
औ कीरति कुमारी श्री राधे महारानी हैं॥ ४॥

इन्द्र-मद-मर्दन दुर्ग गिरि गोबर्द्धन है,
अमृत समान बहै जमुना का पानी है।
प्रेम का प्रकाश यहीं रास का विकास हुआ,
जिस को अमर एक उत्तम कहानी है॥
ब्रज-नव युवराज हैं राज्य करते जहाँ,
राधिका समान सर्वश्रेष्ठ महारानी है।
प्रीति की पताका है उड़ती राज-मन्दिर पै,
वृन्दावन प्रेम की पवित्र राजधानी है॥ ५॥

वृन्दावन वृक्ष हैं कि पारिजात नन्दन के,
वृन्दावन शाखा या प्रेमाञ्जन शलाका हैं।
वृन्दावन रज या रजतरेणु राज रही,

वृन्दाबन कुञ्ज या इन्द्र भवन शोभित हैं,
वृन्दाबन धाम या निकेतन प्रभा का हैं।
वृन्दाबन फूल हैं कि तारावलि उतारी ये,
वृन्दाबन पात हैं कि प्रेम की पताका हैं ॥ ६ ॥

श्रीकृष्णावतार नाटक का दिव्य रङ्ग मञ्च,
सुषमा-सरोवर-सरोज खिला प्यारा है।
जगत के त्रिताप से सताये हुये जीवों को,
शान्ति का निकेतन सुशील शिला प्यारा है।
चौदहो भुवन सप्त लोकन को मोहन ने,
मथ मथ निकाला मथुरा जिला प्यारा है।
प्रम युक्त प्रेमी जन करते निवास जहाँ,
वृन्दाबन प्रेम का विशाल किला प्यारा है ॥ ७ ॥

ज्ञान की कुदाल लेके भक्ति भूमि खोदी गई,
परिखा सनेह की विशाल प्रेम-वाड़ा है।
स्मृति के सलिल द्वारा सींच किया नम्रीभूत,
रहता वसंत सदा गर्मी है न जाड़ा है॥
होता काम क्रोध से सदैव जहाँ मल्ल युद्ध,
साधन श्रेष्ठ नाम-विजय-स्तम्भ गाड़ा है।
भावुक पहलवानों की भीड़ सी दिखाई दे,
वृन्दावन रसिकों का गहरा अखाड़ा है ॥ ८ ॥

देश देशान्तर के अनेक व्यक्ति आते यहाँ,
जिन के हृदय में जलती प्रेम ज्वाला है।
गोपी गुरु गौरव से राज रहे कुञ्जन में,
पाकर प्रवेश होता चित्त मतवाला है ॥
प्रेम की परीक्षा होती प्रेम का ही प्रश्न पत्र,
प्रेम का प्रमाण-पत्र मिलता निराला है।
उद्धव से शिष्य जहाँ आये पाठ पढ़ने को,
वृन्दाबन प्रेम की पवित्र पाठशाला है ॥ ९

भक्तों के विहार हेतु भारत-वसुन्धरा पै,
साक्षात् गोविन्द ने गोलोक को उतारा है।
सुषमा-सर-सरोज पारावार महिमा का,
रस का समुद्र है आनन्द व्योम तारा है॥
भावुकों का भाव और हृदय सहृदयों का,
रसिकों के सरस जीवन का सहारा है।
पावन तपोबन है सच्चे प्रेम योगियों का,
वृन्दाबन श्री का निकेतन रम्य प्यारा है॥ १० ॥

श्रद्धा और भक्ति के बिशाल कूल शोभित हैं,
भव्य भावनाओं की विमल जलधार है।
सरस कविताओं की उठती तरङ्गें नित्य,
गोपी दृग-मीन की विशेष भरमार है॥
राधा का कमल मुख कमल जैसा फूल रहा,
भ्रमर रस-लोलुप श्याम सुकुमार है।
वृन्दाबन बासियों के हृदय बीच देखो तो,
प्रेम की पवित्र नदी बहती अपार है॥ ११ ॥

स्वर्ग में कहाँ है मधुर ध्वनि राधे राधे की,
स्वर्ग में कहाँ कलित कुञ्ज अभिराम है।
स्वर्ग में कहाँ भीर गोपी गाय ग्वाल बालों की,
स्वर्ग में कहाँ पुलिन जमुना ललाम है॥
स्वर्ग में सरस ब्रजभाषा का प्रचार कहाँ,
स्वर्ग में कहाँ माखन-चोर घनश्याम है।
स्वर्ग में अमित सुख इतना अपार कहाँ?
स्वर्ग से भी श्रेष्ठ यह वृन्दाबन धाम है॥ १२ ॥

व्यापक विराट के समस्त ब्रह्माण्ड भर में,
उज्वल प्रदीप द्वीप जम्बू सुखधाम है।
देख लिया हरेकृष्ण! चारो ओर घूम घूम,
जम्बू द्वीप में भी देश भारत ललाम है॥

भारत में उत्तरी और उत्तरी भारत में,
जन्हु-सुता जमुना का द्वाबा अभिराम है।
द्वाबा में है सर्व श्रेष्ठ प्यारी ब्रजभूमि यही,
श्रेष्ठ ब्रजभूमि में भी वृन्दावन धाम है॥ १३॥

मोहन तड़ाग बाग फूल फल मोहन हैं,
मोहन गाय गिरि गोबर्द्धन ललाम है।
मोहन मन मोहन धार बहै जमुना की,
मोहन मधुपुरी मोहन नन्दग्राम है॥
मोहन हैं गोपीजन ग्वालवाल मोहन हैं,
मोहन श्रीराधा और मोहन श्रीश्याम है।
मोहन हैं लता पता कुञ्ज सब मोहन हैं,
मोहन स्वरूप यह वृन्दावन धाम है॥ १४॥

एक रज रेणुका पै रजत-पहार वारौं,
क्षीर सुधासिन्धु वारौं जमुना ललाम पै।
वारौं कोटि कामधेनु एक एक कपिला पै,
वारौं कल्पतरु को कदम्ब अभिराम पै॥
वारौं शची रमा उमा राधा पद-पंकज पै,
वारौं शत कोटि काम प्यारे घनश्याम पै।
वारौं सब देवलोक एक एक मन्दिर पै,
वारि डारौं ब्रह्मलोक वृन्दाबनधाम पै॥ १५॥

देखूँ यदि अर्जुन भारतादि दैनिक पत्र,
इटली का युद्ध कहीं तो चीन का अन्त है।
चोरी हुई, डाका पड़ा हाल यही मिलते हैं,
आया भूकम्प कहीं मरे लाखों हा! हन्त है॥
हरेकृष्ण! हरेकृष्ण! सुनते सदैव यहाँ,
प्यारे नन्द-नन्दन की महिमा अनन्त है।
बस अन्त है दुःख का न नाम स्वप्न में भी है,
बारहो मास श्रीवृन्दाबन में वसंत है॥ १६॥

श्याम घन छाये हैं विशाल व्योम मंडल में,
किम्वा शरीर श्यामसुन्दर सुकुमार है ?
चारो ओर चपला चमाचम चमक रही,
किम्वा पटपीत छटा छिटकी अपार है ?
शनैः शनैः वारि-विन्दु गिरते धरातल पै,
अथवा गले में पड़ा मोतियों का हार है ?
श्रीकृष्णावतार आज हो रहा है हरेकृष्ण !
वृन्दाबन बीच अथवा बर्षा-बहार है ? १७ ?

प्रेम की पिपासा बढ़ी देख निज प्रेमियों की,
प्रेम का समुद्र सीमा तोड़ के बहाया है।
भावुक रसीले जन निराश न होंगे अब,
कामना--पूर्त्तिकर कल्पतरु लगाया है ॥
चिन्तामणि जटित चारु चादर बिछाई ये,
कुञ्ज प्रति कुञ्ज भाँति भाँति से सजाया है।
भारत का भूषण औ तिलक तीन लोकों का,
भक्तों के वास हेतु वृन्दावन बनाया है ॥ १८ ॥

माथे पै मुकट देखो चन्द्रिका चटक देखो,
भ्रकुटी मटक देखो मुनि मन भाई है।
टेढ़ी सी अलक देखो कुण्डल झलक देखो,
चंचल पलक देखो महा सुखदाई है ॥
सुन्दर कपोल देखो अधर अमोल देखो,
लोचन सुलोल देखो खंजन लजाई है।
वंशी रव घोर देखो साँवरो किशोर देखो,
वृन्दावन ओर देखो कैसी छबि छाई है ॥ १६ ॥

यहीं तो थी कभी ऋषि सौभरि की तपोभूमि,
पास में मिली हुई जमुना की सतह से।
कलित कदम्ब तरे राज रहे केशव के,
छोटे छोटे मंजु पद कंज की तरह से ॥

देखो खड़ा निर्भय सहस्त्र फणि मण्डल पै,
मंद मंद मुरली बजाता हुआ ठह से।
नाथ लाया कालीनाथ होता अनुमान यही,
कूद के कन्हैया अभी आया कालीदह से ॥ २० ॥

…म की पिपासा शान्त होती कुण्ड ललिता में,
वंशी की तान सुनो मधुर अलि-गुञ्ज में।
श्यामले तमालन में प्रेम रन्ध्र जालन में,
श्याम की है झलकती आभा द्रुम पुञ्ज में॥
पिता के प्रणय में पुत्र का अधिकार कहाँ?
पशु पक्षी तक भाग जाते निशि मुञ्ज में।
दूर कर बाधा सभी प्रेम युक्त श्रीराधा की,
आज भी करता श्याम सेवा सेवा-कुञ्ज में ॥ २१ ॥

प्रेमी जन देख देख होते हैं प्रसन्न जिसे,
प्रेम परिपूर्ण, जहाँ पृथ्वी में पवन में।
करती प्रणाम मानो बसुधा को छूती हुई,
चित्त फंस जाता कुञ्ज लतिका सघन में॥
आ गये स्वयं प्रगट हो के श्रीविहारीलाल,
कैसा था प्रभाव हरिदास के भजन में?
अंगजा समस्त सहचरियों को साथ लिये,
करते बिहार बिहारी जी निधिबन में ॥ २२ ॥

किया था गोपियों ने यहीं तो कात्यायनी व्रत,
चंचल चित्त चोर की चाह भरी चाट पै।
प्रेम में विभोर उसे देख नहीं होता कौन?
कौन नहीं जाता बिक जाके प्रेम हाट पै॥
वारि डारौं हरेकृष्ण! कल्प तरु कोटि कोटि,
एक ही कदम्ब के विचित्र ठाठबाट पै।
देख कर चीर बँधे जान यही पड़ता है,
आता है चुराने श्याम चीर चीरघाट पै ॥ २३ ॥

कंज कली कृष्णरूप घेर घेर पत्र रूप,
बैठे सब ग्वाल बाल कालिन्दी के तट पै।
बीच बीच गोपी और बीच बीच माधव का,
देखलो विचित्र दृश्य मित्र ! चित्रपट पै ॥
नित्य नौ बजे ही ध्वनि होती जहाँ नूपरों की,
वारि डारौं कोटि चन्द्र चन्द्रिका मुकट पै।
आज भी अखण्ड रास होता रास मण्डल में,
करता बिहार ब्रजराज बंशीबट पै ॥ २४ ॥

श्याम ही की याद में तो श्याम रंग तेरा हुआ,
जाना खूब जाना गुप्त भाव तेरे मन का।
सूख के शरीर हाय ! काँटा हुआ वेदना से,
तोड़ के फेंका पता पता कुञ्ज-भवन का ॥
फूल नहीं फूले विरहाग्नि से विदीर्ण हुआ,
लाल लाल निकला कलेजा तेरे तनका।
कौन कवि अज्ञ तुझे कहता करील ! प्यारे,
तू तो है साक्षात् कल्पवृक्ष वृन्दावन का ॥ २५ ॥

तेरी ही दिव्य द्युति देख कर दिवाकर में,
परम प्रसन्नता से सरोज खिल जाते हैं।
तेरी ही कमनीय कान्ति देख के कुसुमों में,
झुककर झपट के मलिन्द मिलजाते हैं ॥
तेरे प्रकाश से ही जान के प्रकाशित उसे,
दीपक प्रदीप्त पर पतंग पिल जाते हैं।
वृन्दावन घनश्याम छटा में तुम्हीं को देख,
भक्त-मन-मयूरों के हृदय हिल जाते हैं ॥ २६ ॥

धन्य धन्य वृन्दावन बासी बिलाव चूहे जो,
मन्दिरों में घुस प्रभु का प्रसाद पाते हैं।
धन्य धन्य वृन्दावन बासी कीट पतंग जो,
पादोदक पान कर लोटते नहाते हैं ॥

धन्य धन्य वृन्दावन वासी मशक-वृन्द जो,
साधुओं को जगा के भजन करवाते हैं।
धन्य धन्य वृन्दावन वासी मोर मर्कट जो,
नाच नाच नित्य सुध श्याम की दिलाते हैं॥ २७॥

एक बार अयोध्या दो दो बार द्वारिका जाओ,
तीन बार जाकर त्रिवेणी में नहाओगे।
चार बार चित्रकूट नव बार नासिक में,
बार बार जाके बद्रीनाथ घूम आओगे॥
कोटि बार काशी केदारनाथ रामेश्वर में,
गया जगन्नाथ आदि चाहे जहाँ जाओगे।
होते प्रत्यक्ष यहाँ दर्शन श्याम सुन्दर के,
वृन्दावन सा कहीं आनन्द नहीं पाओगे॥ २८॥

कीरति सुता के पग पग में प्रयाग जहाँ,
केशव के केलि-कुञ्ज कोटि कोटि कासी हैं।
जमुना में जगन्नाथ रेणुका में रामेश्वर,
तरु तरु पे अमित अयोध्या निवासी हैं॥
गोपियों के द्वार द्वार पर हरिद्वार जहाँ,
बद्री केदार जहाँ फिरते दास दासी हैं।
स्वर्ग अपवर्ग लेकर व्यर्थ में करेंगे क्या?
जानते नहीं हो हम वृन्दावन वासी हैं॥ २६॥

काँटेदार करील के वृक्ष जिस भूमि पर,
देता दिखलाई जहाँ खारा जल कूप है।
गारी दे बोलते ब्रजवासी सब आपस में,
अन्न फल हीन धरा खादर कुरूप है॥
पाकर के छाक छाँछ गउयें चराता फिरे,
फिर भी बनाया उसे स्वर्ग से अनूप है।
ऐसा वो मनमौजी मस्त ठाकुर त्रिलोकी का,
रक्षक हमारा वही वृन्दावन-भूप है॥ ३०॥

जल पूर्ण जमुना टिकारी पर टिकी हुई,
बंशीवट-मध्य रास-मण्डल तना हुआ ।
पवन भी वही है और गगन भी वही है,
निधुबन निकुञ्ज लताओं से सना हुआ ॥
मन्दिरों की कहे कौन प्रत्येक घर घर में,
बैठा श्यामसुन्दर सनेह से सना हुआ ।
कृष्ण-पद-प्रेमी सच्चे भक्त भावुकों के लिये,
आज भी वैसा ही है वृन्दावन बना हुआ ॥ ३१ ॥

वेदों में न देखा ब्रह्म शास्त्रों में न देखा ब्रह्म,
दर्शन वेदान्त में न देखा ब्रह्ममूल में ।
योग में समाधि में न देखा हरेकृष्ण ! उसे,
खोजा सब ठौर पात पात फूल फूल में ॥
भक्तों के प्रसाद से विषाद अब दूर हुआ,
आभा कुछ दिखाई दी कालिन्दी के कूल में ।
आगे बढ़ देखा तो ग्वाल बालों को संग लिये,
ब्रह्म वह लोट रहा वृन्दावन धूल में ॥ ३२ ॥

कलित कदम्बों के कमनीय केलि कुञ्जों में,
कल कल करता कालिन्दी का किनारा हो ।
तीखे दृग तान मंजु मुरली बजाता हुआ,
वेश नटवर खड़ा नन्द का दुलारा हो ॥
रास का प्रबंध करें ललिता रंगदेवी जी,
मण्डल रचाया गया भानु-सुता द्वारा हो ।
प्रेमावतार कृष्ण करता हो विहार जहाँ,
प्रेमियों को क्यों न फिर वृन्दावन प्यारा हो ॥ ३३ ॥

मेढक महोदयों को मूल्य क्या मालूम भला,
प्यासा पपीहा स्वाती को सुधा सम मानेगा ।
चाँदनी में चमत्कार कौन चमगादड़ों को,
चन्द्रमा की चारुता चकोर पहिचानेगा ॥

गोमय का कीट क्या केतकी की सुगन्धि जाने,
सरस रस लोभी मलिन्द रस छानेगा।
रसिक सनेही श्यामसुन्दर के प्रेमी बिना,
वृन्दावन धाम का महत्व कौन जानेगा ? ३४ ॥

विश्वेश्वर विश्वम्भर नाम जिस ईश्वर का,
माँग माँग माखन मलाई दही खाता है।
जिसने मधुर ध्वनि वंशी की बजाई यहाँ,
पाञ्चजन्य शंख वही रण में बजाता है॥
वृन्दावन बीच रास-लीला का खिलाड़ी श्याम,
युद्ध में प्रवीण महाभारत रचाता है।
मैं हूं अल्पमति अज्ञ वर्णन करूँ क्या स्वयं,
ब्रज का महत्व ब्रजराज ही दिखाता है॥ ३५ ॥

पुण्य का प्रताप उदय होता कई जन्मों का,
एकबार ब्रज में मनुष्य जब आता है।
सेवाकुंज, बंशीवट, कालीदह, देख देख,
सुखद अतीत सुधा-सिंधु में समाता है॥
कामना न और किसी बात की रहती उसे,
सुरपुर के यान यों कहके फिराता है।
हे देवदूतो ! क्यों विमान यहाँ लाये तुम,
वृन्दावन वास छोड़ स्वर्ग कौन जाता है ? ३६ ॥

गोवर्द्धन शैल वही मान दण्ड वसुधा का,
जिसको उठाया श्यामसुन्दर ने हाथ में।
जमुना जल विमल धार वही बहती है,
जिसमें नहाये श्याम गोपियों के साथ में॥
यशोदा अजिर में अनेकों खेल खेले जहाँ,
प्यारी ब्रजधूल वही बिछी पथ-पाथ में।
सागर तरंग सम भेद नहीं कोई मित्र !
वृन्दावन धाम और वृन्दावन नाथ में॥ ३७ ॥

विटप शिखाओं पर डोलते मयूरपिच्छ,
शिखर मन्दिरों के तिलक दिये माथ में।
प्यारी वनमाला वनमाला सी पहिन रही,
मधुप गुँजारते हैं वंशी लिये हाथ में॥
गैया चराते सब ग्वाल बाल गोवर्द्धन में,
कीरति कुमारी श्रीकलिन्दजा के साथ में।
सागर तरंग सम भेद नहीं कोई मित्र!
वृन्दावन धाम और वृन्दावन नाथ में ॥ ३८ ॥

रहता सदैव छाया घनघोर अंधकार,
ऊष:काल उग के न भानु तम खोता जो।
अन्न फल हीन जीव भूखे मरजाते सब,
एक वर्ष जल से न मेघ मुखधोता जो॥
घूमते फिरते पशु-तुल्य सभी मानव भी,
ईश्वर हृदय में न बुद्धि बीज बोता जो।
डूब जाती वसुधा समस्त महासागर में,
विश्व में न विद्यमान वृन्दावन होता जो ॥ ३९ ॥

जन्म हुआ भाग्य से पवित्र भूमि वृन्दावन,
जन्मने को जहाँ तरसते सुरभूप हैं।
सेवाकुञ्ज, वंशीवट कालीदह, कुञ्ज वही,
संग के खिलारी श्री विहारी जी अनूप हैं॥
जमुना नहाते नित्य रास नित्य करते हैं,
ऊधमी न ज्यादा हैं, उन्हीं के अनुरुप हैं।
श्याम के सखा हैं, हैं सनेही श्यामसुन्दर के,
हम ब्रज-बालक हैं, श्याम के स्वरूप हैं ॥ ४० ॥

वास्तव में चीर चोरी कोंथ परिवर्त्तन में,
गजब है गोपी चित्त चंचल चुराने में।
सत्यभामा सरीखे रुकमों के रहते हुये,
काम को चुराया खूब कुब्जा के रहाने में॥

चुराखिया राधिका जैसा भी गुमानी हृदय,
वंशी की मधुर एक तान के सुनाने में।
करते हो ऐसे काम वृन्दावनचन्द ! किन्तु,
डरते क्यों चोर शिरोमणि कहलाने में ॥ ४१ ॥

लाल के कपोलन पै गुलाल लाल सोहै यों,
मंगल ने वास मानो चन्द्र में बनाया है।
शनि के समान रेख कज्जल की राज रही,
केशर तिलक भाल गुरु सा लगाया है ॥
दिव्य दिवाकर तुल्य कुण्डल झलक देख,
राहु के सदृश केश-पाश घिर आया है।
सूर्य चन्द्र तारे सब एक ठौर देखो आज,
वृन्दावन बीच कोई व्योम बन छाया है ॥ ४२ ॥

वारौं घनश्याम कोटि श्याम के कलेवर पै,
वारौं द्युति विद्युत पीतपट अमन्द पै।
वंशी के प्रताप पर वारौं सुरराज चाप,
वारौं बुन्द वर्षा माल मोती सुखकन्द पै ॥
ब्रज के एक कण पै वारौं कोटि तारागण,
वारौं व्योम गङ्गा कोटि जमुना अनन्द पै।
वारौं सौ कोटि नभ-मण्डल रास-मण्डल पै,
वारौं शतकोटि चन्द वृन्दावन चन्द पै ॥ ४३ ॥

रात को चिल्लाते पहरेदार भी राधे राधे,
बोलता पपीहा कहीं कूक रहा मोर है।
ऊषःकाल मंगलीक मंगला खोगी जाय,
मन्दिरों में घण्ट घड़ियाल घनघोर है ॥
जमुना तट यात्रियों की भीड़ सी दिखाई दे,
पूजा पाठ धर्म की प्रवृत्ति सब ओर है।
'सूत्रे मणि गणा इव' हृदय सभी के बिद्ध,
सब का इष्ट देव वृन्दावन-किशोर है ॥ ४४ ॥

कारागार जगत् जो काट कर देता मुक्ति,
कारागार जन्मस्थान उसी ने बनाया है।
शंकर से योगियों के भी ध्यान में न आवे जो,
वही शिशु गोद में यशोदा ने खिलाया है॥
काल का भी जो कराल काल कहलाता उसे,
ऊखल में बाँध कर मैया ने रुलाया है।
एक एक वृन्दावन वासी सौ सौ वार धन्य,
ब्रह्म अविनाशी निज संग में नचाया है॥ ४५॥

जीती जागती मृत जीवन को जिलाती हुई,
कीरति सुता जगमगाती ज्योति जालिका।
आदि शक्ति सी दीखती है जो सर्व शक्तिमयी,
भक्ति भाव भूषित बनाती भक्त-पालिका॥
दैन्य दुःख दारुण समस्त कर देती दूर,
देती दिव्य दर्शन दिनेश दीपमालिका।
साँवरो किशोर परछाँही तुल्य पीछे फिरै,
वृन्दावन बीच ऐसी देखी ब्रज-बालिका॥ ४६॥

छिप के किसी भाँति ग्वाल बालों और मैया से,
बंशीवट होकर अकेला चला आवेगा।
उठके तुरन्त चल दूंगी अभिसार ओर,
राधे नाम लेके जब बाँसुरी बजावेगा॥
जान नहीं पावेगा रहस्य कोई आ बन में,
अचका गुलाल लाल गालों पै लगावेगा।
प्रेम रंग द्वारा रँग देगा नीलाम्बर मेरा,
होली का खिलाड़ी कब मेरे घर आवेगा॥ ४७॥

प्राणन को खींचै सखी ज्योंही रास मण्डल में,
तीखे दृग बाण तान मेरी ओर तमकैरी।
काह कहूं सुषमा अपार नृत्य कौतुक की,
केशन पै कारी कमरिया खूब झमकैरी॥

कैसे अनिमेष ह्वै निहारा श्यामसुन्दर को,
पीत पट दिव्य द्युति दामिनी सी दरकैरी ।
चारो ओर मचती चकाचौंध सी आँखिन में,
वृन्दावनचन्द मुख चन्द सम चमकैरी ॥ ४८ ॥

ह्वै राकनी चोटि चोटि चाहौ प्यारे प्राण तजौ,
बाँधि के पषाण चाहो सिन्धु डूबि मरिये ।
चाहो विष पान करि मोद पूरि सोय रहौ,
चाहो ह्वै अकेले शारदूल संग लरिये ॥
तोप तीर तरवार वार हरेकृष्ण ! सहौ,
धीर ह्वै विहाय के अरण्य में विचरिये ।
दुःख सहौ लाखन परन्तु वृन्दावन–बासी,
श्याम निरमोही संग प्रीति नहिं करिये ॥ ४९ ॥

आनन अमन्द पै विराज रहे कोटि इन्दु,
छाई है अनूप कान्ति संकटप्रहारी की ।
सुन्दर किरीट में दिनेश से प्रकाशमान,
भाई है कपोल कान्ति मेरे सुखकारी को ॥
कुञ्जन तमाल तरे बाँसुरी बजाय रहे,
फैली है बहार आज इन्द्र फुलवारी की ।
व्यापक निरीह की न लीला कछु जानी जात,
ब्रह्म अवतारी छविधारी बनवारी को ॥ ५० ॥

हिल हिल के बुलाक हृदय हिला देती हा !
अधरों पर अनूप छाई पान लाली है ।
चिबुक मसि बिन्दु मसल देता दिल मेरा,
मधुर मुस्कान विष पूरित भुजाली है ॥
चंचलकिशोर दृग कोर बड़ी तीखी लगै,
बचन–सुधा सुन लजाती काकपाली है ।
ऐसा सुकुमार श्याम सेवा करे राधिका की,
वृन्दावन धाम का अनोखा बनमाली है ॥ ५१ ॥

गोबर का कीड़ा सदा गोबर खोजता फिरे,
कौवे सदैव दृष्टि मांस पर लगाते हैं।
वारिज से श्वेतबक मछली उठाते शीघ्र,
चन्दन समीपी सर्प विष बरसाते हैं॥
पत्थरों के भवन में चूहे बिल ढूँढ़ते हैं,
दिन में उलूक खोज तम की लगाते हैं।
नन्दन बन में उष्ट्र खोजते बबूल को हैं,
वृन्दाबन में भी दुष्ट दोष दिखलाते हैं॥ ५२॥

कौन मनुष्य चाहेगा तरल तक्र पीना जो,
देवता समान पूज्य भाग मख लेता है।
पैसे और पाइयाँ क्यों जमा वह करेगा जो,
पारस सरीखा पास रत्न रख लेता है॥
कैसे निबोलियाँ भला भायेंगी हरेकृष्ण! जो,
स्वाद सुधा सदृश अंगूर चख लेता है।
भूल जाता पूजा पाठ ज्ञान ध्यान सब को जो,
एक वार मोहन स्वरूप लख लेता है॥ ५३॥

पूजा का लौह किम्बा बधिक असि लौह दोनों,
पारस स्पर्श स्वर्ण सशक्त बन जाते हैं।
शर्करा हो या शकृत हरेकृष्ण! पावक में,
दोनों समान भस्मानुरक्त बन जाते हैं॥
दूषित हों नाले किम्बा शुद्ध जलवाले स्रोत,
गङ्गा जल पावन प्रसक्त बन जाते हैं।
पापी या साधु कोई इससे प्रयोजन नहीं,
वृन्दाबन आके सभी भक्त बन जाते हैं॥ ५४॥

पापी शत्रु काम ने ज़र्जर कलेवर किया,
गृह के प्रपंच गये लोभ से सताये तुम।
कामिनी कृपाण पर कैसे हाय! लोट गये,
रक्त से शरीर लथपथ कर लाये तुम॥

रोग भय चिन्ता ही की चिता पर सोये सदा,
सुख के सुदिन सभी शोक में बिताये तुम।
इतने दुख पाये हाय! माया पिशाचिनी से,
वृन्दावन ओर सखे! क्यों नहीं आये तुम ॥ ५५ ॥

पंच तत्व निर्मित शरीर और जाया मित्र,
लौकिक व्यवहार अनित्य सब जानिये।
कलित कुमोदिनी समान भव सागर में,
श्री श्री ब्रजचन्द नख चन्द उर आनिये॥
तुच्छ विपदा से न तजिये श्रेष्ठ साधन को,
प्रियतम मिलन का सच्चा ठान ठानिये।
होंगे दिव्य दर्शन अवश्य श्यामसुन्दर के,
वृन्दावन धाम का स्वरूप पहिचानिये ॥ ५६ ॥

बड़े बड़े लाड़ प्यार पाला जिस लालन का,
चिता पर आग वही सुख में लगायेगा।
मृतक शरीर तेरा देख वही डरपेगी,
धूत धूत धन जिस जाया को खिलायेगा॥
जबलौं कमाऊ पूत आदर भी तभीलौं है,
वृद्ध हुये पर कोई काम नहीं आयेगा।
ऐरे 'नर मूढ़! अभी आजा शीघ्र वृन्दावन,
हीरा सा जन्म नहीं तो धूल में मिलायेगा ॥ ५७ ॥

एक ही वार यदि पकड़ वह लेगा तुझे,
छोड़ नहीं सकता कदापि तार डालेगा।
प्रारब्ध संचित क्रियमाण द्रव्य लेगा छीन,
जन्म जन्मार्जित पाप पुण्य जार डालेगा॥
वरछी समान दृष्टि तिरछी चलावैं श्याम,
अनित्य इच्छाओं का उदर फार डालेगा।
पथिक न जाना वृन्दाटवी वहाँ रूप ठग,
हाँसी की फाँसी गले में डाल मार डालेगा ॥ ५८ ॥

नास्तिक हो मूढ़ किम्बा कैसा भी दुराचारी हो ?
सेवाकुञ्ज जाके सेवा करना सिखादें हम।
देखें फिर कैसे लोभ मदिरा को पियेगा जो,
एक बार मोहन की मदिरा चिखादें हम॥
जमुना की श्यामता में श्याम अभी विद्यमान,
हृदय पटल पर उसीसे लिखादें हम।
दिव्यानुराग रूप अंजन लगाके आँखों में,
वृन्दावन बीच अभी कृष्ण को दिखादें हम॥ ५६॥

पहिले बन्द कीजिये इन चर्म चक्षुओं को,
अपना स्वरूप दिव्य मन में विसेखिये।
पीतिमा प्रभूत प्रेमौषधि से करके दूर,
माया यवनिका का पतन कर लेखिये॥
श्याम की श्यामता दिव्य लेके कनीनिकाओं में,
परम पवित्रता के पलक परेखिये।
दिव्योन्माद रूप अंजन लगा के भली भाँति,
दिव्य लोचनों से दिव्य वृन्दावन देखिये॥ ६०॥

हृदय हर जाता बड़े बड़े वेदान्तियों का,
कैसा मनोहर मनमोहन का वेश है।
कहते जिसे हैं परब्रह्म परमब्रह्म लोग,
प्रीतम-पद-नख-आभा का अणु लेश है॥
पाकर प्रकाश वही भाग्यवश हरेकृष्ण !
होता भावुकों का रीति-रस में प्रवेश है।
व्योम में बसुधा में चारो ओर चराचर में,
देखो जिस ओर वहीं ब्रज में ब्रजेश है॥ ६१॥

भावनानुसार भले भव्य भर देता भाव,
करता विहार ब्रजवासियों के मन में।
छोड़ ब्रजभूमि को न जाता कहीं बाहर है,
रहता सदैव है समाया श्याम घन में॥

देता दिव्य दर्शन आज भी ब्रजराज यहाँ,
हाँ प्रेम होना चाहिये सच्चो भक्त जन में ।
अनुराग रूप अंजन लगाकर चाहे जो,
देख ले वृन्दावन-विहारी वृन्दावन में ॥ ६२ ॥

माथे पर मोर मुकट मंजुल बिराजै औ,
केशर तिलक भाल भ्रकुटी विकट रे ।
कलित कपोल कमनीय कान्ति कुण्डल की,
बाल रवि विद्युत समान पीतपट रे ॥
लोचन विशाल लाल मुरली रसाल सोहै,
वंशीवट तट बहै जमुना निकट रे ।
ऐसी दिव्य मूर्त्ति सदा उर में बसाये हुये,
वृन्दावन बास कर कृष्ण कृष्ण रट रे ॥ ६३ ॥

देता दिखलाई प्रतिविम्ब श्यामसुन्दर का,
दर्पण के समान शुद्ध अन्तःकरण में ।
प्यारी ब्रजधूल मल अंग बनो मुक्त सभी,
व्यर्थ में हो फँसे हाय ! जीवन मरण में ॥
श्याम सरसीरुह चरण में लगाओ ध्यान,
स्वामी सब जीव लोक तारण तरण में ।
काल भी कराल बाल बाँका नहीं सके कर,
निर्भय पड़े सोओ वृन्दाबन-शरण में ॥ ६४ ॥

सेवाकुञ्ज जाके ब्रजधूल को चढ़ाओ शीस,
नीके कर तमाल तरु पेख लो पेख लो ।
देखो दिव्य रास नित्य वंशोवट विहारी का,
बाँके विहारी जी को परेख लो परेख लो ॥
बार बार जीवन अलभ्य नहीं मिलता ये,
प्यारे प्रिया प्रियतम को लेख लो लेख लो ।
आओ मित्र ! आओ लाभ लोचन उठाओ शीघ्र,
वृन्दावन-निकुञ्ज-छवि देख लो देख लो ॥ ६५ ॥

प्रेम के समेत रहो प्रेमियों की संगति में,
प्रम से नहावो जल जमुना ललाम में ।
प्रेम के समेत देखो रास नित्य वंशीवट,
प्रेम के समेत फिरो कुञ्ज वन श्याम में ॥
प्रेम के समेत पावो प्रभु का प्रसाद सदा,
प्रेम के समेत करो प्रीति हरि नाम में ।
प्रेम के समेत जपो राधाकृष्ण ! राधाकृष्ण !
प्रेम के समेत बसो बृन्दाबन-धाम में ॥ ६६ ॥

मुकट अनूप देख लज्जित प्रभाकर है,
आनन अनूप देख चन्द्रमा लजाया है ।
अलक अनूप देख काक पत्त गिरते हैं,
अधर अनूप देख बिम्बा शरमाया है ॥
मुरली अनूप देख किसको क्या कहें हम ?
कैसा अनूप वेश नटवर बनाया है ।
अद्भुत अनूप रूप देख श्यामसुन्दर का,
वृन्दाबन बास का अनूप फल पाया है ॥ ६७ ॥

व्योम बीच चारु चन्द्र चन्द्रिका को देख देख,
पंकज प्रसन्न यदि होते हैं तो होने दो।
मुग्ध लता के यदि योबन रूप-सागर में,
विटप समूह अंग धोते हैं तो धोने दो ॥
प्रेम के समेत सभी जगत् के प्रेमी जन,
प्रीतम के साथ यदि सोते हैं तो सोने दो।
होकर अशान्त चित्त श्याम के रूठ जाने से,
वृन्दावन बीच हम रोते हैं तो रोने दो॥ ६८ ॥

देवकी समान भारत माता की बेड़ियों को,
तोड़ नहीं पाता तो हृदय में रो जाता हूँ।
प्यारी ब्रजभूमि में भी दूध दही वैसा नहीं,
सत्य सत्य कहता नाथ ! भूखा सो जाता हूँ ॥

जीविका कमाने को कठिन परतन्त्रता में,
कभो कभी जीवन से भी हाथ धो जाता हूँ ।
बार बार मूर्च्छित हो जाता किन्तु मन्दिरों में,
तेरी ही मृदु मूर्ति देख स्वस्थ हो जाता हूँ ॥ ६६ ॥

शक्ति हीन दुर्बल अतीव काम लोलुप हूँ,
आसुरी सम्पति का एक मैं ही सहारा हूँ ।
मिथ्या छल दम्भ द्वेष ईर्ष्या का निवास स्थान,
पातकी पापात्मा पापी पाप का पिटारा हूँ ॥
आलसी निरुद्यमी साधन विहीन सर्वथा,
चाहता उद्धार बास वृन्दाबन द्वारा हूँ ।
'सर्वधर्मान्परित्यज्य' आगया शरण तेरी,
चाहे जैसा भी हूँ किन्तु अब तो तुम्हारा हूँ ॥ ७० ॥

देख के असंख्य पाप लज्जित जबान होती,
हिम्मत नहीं पड़ती प्रार्थना सुनाने की ।
वेदना विशाल किन्तु करके विवश नाथ !
देखती है राह दीनबन्धुता दिखाने की ॥
सोच लो सर्वेश ! स्वयं कितना है कष्ट हमें,
व्यापक आप आवश्यकता क्या बताने की ?
चाहे जो करो अब वृन्दाबन-बिहारी नाथ !
ताकत तमाम नहीं तर्कना बढ़ाने की ॥ ७१ ॥

क्रोध है महान् शत्रु नाश कर देता आयु,
वृन्दाबनचन्द ! मुझे इससे बचाइये ।
पावन पिता प्रभु करुणा के निधान आप,
मैं हूँ अबोध सुत सनेह सरसाइये ॥
आपके सहारे बिना पार नहीं होंगे नाथ !
देख दशा दीन मेरी दया दरसाइये ।
मोह मद दम्भ द्वेष ईर्ष्या को निकाल कर,
प्यारे ब्रजराज ! वास उर में बनाइये ॥ ७२ ॥

जाये जिसे जाना हो हिमालय तप करने,
शीघ्र जाये जिसे प्यारी गङ्गा जल धारा हो ।
जाकर गुफाओं में योगासन लगाये खूब,
होता उद्धार यदि हठयोग के द्वारा हो ॥
धूनी तथा पंचाग्नि भी तापे जिसे तापना हो,
करले प्रयत्न जहाँ जिसका सहारा हो ।
मैं भी यही चाहता हूँ वृन्दाबन कुञ्जन में,
मैं हूँ अकेला और प्रियतम हमारा हो ॥ ७३ ॥

छाती से लगा के ज्वाला छाती की मिटालूँ खूब,
पीके पादोदक प्यास प्राणों की बुझाऊँ मैं ।
मन्द मन्द मोहनी मधुर मुसकान देख,
तन की तपन जलन जी की मिटाऊँ मैं ॥
चंचल किशोर ! गहि गोद में बिठाऊँ प्यारे,
चूम के कपोल सुधा सिन्धु में समाऊँ मैं ।
एक एक लालसा अनेक बार पूरी करूँ,
वृन्दाबन-बीच जो एकान्त तुम्हें पाऊँ मैं ॥ ७४ ॥

मन में बसाऊँ तो एक ठौर रहता नहीं,
बुद्धि में बसाऊँ क्या तू बुद्धि का ही चोर है ।
चित्त में बसाऊँ तो चित्त महा चंचल है,
हृदय में बसाऊँ तो हृदय कठोर है ॥
नेत्रों में बसाऊँ तो नेत्र भी निर्निमेष नहीं,
प्राणों में बसाऊँ तो चुभती दृग कोर है ।
वृन्दाबन चन्द ! तुझे कहाँ पे बसाऊँ प्यारे !
तू तो सुकुमार अति कोमल किशोर है ॥ ७५ ॥

बहुत समय तक सुलाया मोह-निद्रा में,
अब तो अखण्ड धूम गीता की मचा दो नाथ !
बुद्धिमयी राधिका लपटी रहे चरणों में,
इन्द्रियों को संग में गोपियों सा नचा दो नाथ !

बनालो वृन्दावनचन्द ! हमें अपना भक्त,
काम क्रोध प्रभृति शत्रुओं से बचा दो नाथ !
बिसरे न कभी भी हृदय में ही देखा करें,
ऐसी रहस्यमयी रासलीला रचा दो नाथ ॥ ७६ ॥

कौन दिन होगा नाथ ! जो बसेंगे वृन्दावन,
नित्य उठ प्रात ही जमुना में नहायेंगे।
हरेकृष्ण ! हरेकृष्ण ! कृष्ण कृष्ण हरे हरे !
मुख से सदैव पुलकायमान गायेंगे ॥
सेवाकुञ्ज वंशीवट कालीदह कुञ्जन में,
प्रेम में विभोर मन चाहे जहाँ जायेंगे।
तेरे ही ध्यान में प्यारे तजेंगे अपने प्राण,
तेरे हो कहा के श्याम तुझ में समायेंगे ॥ ७७ ॥

कोटि कोटि कंचन अमूल्य रत्न राशियों का,
लोभ दिखलाओ पर मुख को न मोड़ेंगे।
दूर से ही छोड़ कर पिशाची कामिनी रूप,
नाता व्रजराज से अखण्ड एक जोड़ेंगे ॥
एक से भी एक दुःख दारुण सतावें क्यों न ?
प्यारे ब्रजचन्द्र से न प्रीति कभी तोड़ेंगे।
छोड़ देंगे तन मन प्राण छोड़ देंगे किन्तु,
वृन्दाबन बास कर प्रण को न छोड़ेंगे ॥ ७८ ॥

ऐसी क्या आवश्यकता दुकूल सुखकारी की ?
प्यारी ब्रजधूल सब देह में लगायेंगे।
भोजन सुस्वादु लेके व्यञ्जनों को करेंगे क्या ?
माँग माँग टूक ब्रजवासियों के खायेंगे ॥
टूट जाये वेद पन्थ छूट जाये लोक लाज,
हम तो सदैव हरेकृष्ण कृष्ण गायेंगे।
जियेंगे तो यहीं पर मरेंगे तो यहीं पर,
वृन्दावन छोड़ कहीं बाहर न जायेंगे ॥ ७९ ॥

निन्दा करे कोई या प्रशंसा ही हमारी करे,
रज के समान बन रज में रहेंगे हम ।
मान करे कोई या अपमान ही हमारा हो,
सत्य या असत्य कृष्ण-कज में रहेंगे हम ॥
देह, मन, प्राण, बुद्धि सब को विसारे हुये,
भावना-सुराज्य सज धज में रहेंगे हम ।
कीट या पतंग घन चाहे जो बनेंगे किन्तु,
वृन्दाबन वास कर ब्रज में रहेंगे हम ॥ ८० ॥

नाना रिद्धि सिद्धियों की बर्षा क्यों न होती रहे,
पड़ेगा न तथापि प्रभाव सत्य-केली पै ।
प्राण क्यों न पंकज ले लेवे परन्तु फिर भी,
जायेगा न भौंरा कभी चम्पा या चमेली पै ॥
सावधान होश को सँभाले प्रेलोभनो ! रहो,
भूल मत जाओ निज माया अलवेली पै ।
अच्छी तरह से याद रहे मेरा प्रण वृन्दा-
बन हेतु प्राण लिये फिरते हथेली पै ॥ ८१ ॥

किसी को आनन्द मधुर गान सुनने में औ,
किसी को आनन्द भोजन स्वाद लहने में ।
किसी को आनन्द तुच्छ धन के बटोरने में,
किसी को आनन्द है काम-केलि चहने में ॥
किसी को आनन्द राजनीति के पचड़ों में है,
किसी को आनन्द लीडर-पन्थ गहने में ।
चाहे जिसको हो चाहे जिसमें आनन्द किन्तु,
हमें तो आनन्द है वृन्दाबन रहने में ॥ ८२ ॥

निर्भय अखण्ड एक बीर ब्रह्मचारी बन,
मुख से सदैव नाम कृष्ण का लिया करूँ ।
कृष्ण के ही ध्यान में विसारूँ दीन दुनिया को,
कृष्ण मुखचन्द्र देख देख के जिया करूँ ॥

रास में प्रविष्ट हो अपार सुख लूटूँ नित्य,
राधा-पद-कंज-चरणामृत पिया करूँ ।
जन्म प्रति जन्म नहीं और कहीं जाऊँ नाथ !
इच्छा यही है वास वृन्दावन किया करूँ ॥ ८३ ॥

कामना नहीं है काम-केलि कमनीयता की,
कामना नहीं कुल कुटुम्ब के बढ़ाने की ।
राज्य-सुख-वैभव-विलास की न कामना है,
कामना नहीं है नाम अपना कमाने की ॥
कामना हृदय में न इन्द्रासन की भी नेक,
कामना कदापि नहीं मोक्ष-पद पाने की ।
कामना है एक यही वृन्दावन-वास कर,
राधे राधे कहने की कृष्ण कृष्ण गाने की ॥ ८४ ॥

बाकत शरीर में न बाकी श्याम सुन्दर जो,
ध्रुव के समान एक पैर से खड़ा रहूँ ।
ऐसी आत्मदृढ़ता कदापि नहीं मोहन जो,
भीष्म के तुल्य किसी प्रण पर अड़ा रहूँ ॥
चैतन्य जैसी नाथ ! चैतन्यता तो है ही नहीं,
कैसे बन प्रेम-सिन्धु सदा उमड़ा रहूँ ।
सोचा इस हेतु यही साधन सरल मैंने,
वृन्दावन-बीच किसी कुञ्ज में पड़ा रहूँ ॥ ८५ ॥

शक्ति नहीं ध्रुव सी अखण्ड तप कैसे करूँ,
भक्ति न प्रह्लाद सी राम राम कहने की ।
अम्बरीष तुल्य दृढ़ व्रत का नियम नहीं,
हरिश्चन्द्र सी न दृढ़ता कष्ट सहने की ॥
मोरध्वज जैसा मुझे धर्म का भी प्रेम नहीं,
श्रद्धा नहीं सूर सी प्रेम-पथ गहने की ।
आराधना न और कोई कर सकता नाथ !
साधना एक मेरी वृन्दावन रहने की ॥ ८६ ॥

शिर पर सुधांशु क्यों रक्खा गया प्रेम युक्त,
हार त्यों गले का बनाया विष महेश है ।
पर्वत समुद्र पर समान जो न बर्षा की,
नाम फिर काहे का जलधर जलेश है ?
पारस स्पर्श की बड़ाई कौन करता यदि,
स्वर्ण-रिक्त रह जाता लोहा लवलेश है ।
पापी और साधु को न एक सदृश तारा तो,
वृन्दावन धाम का महत्व क्या विशेष है ? ८७ ॥

वृन्दावन बास कर रज में विश्राम भला,
मखमली गद्दों से न प्रीति को निबाहिये ।
वृन्दावन बास कर छाक छाछ पीना भला,
मेवा मिष्टान्न के नहीं स्वाद को सराहिये ॥
वृन्दावन बास कर आभीरों का संग भला,
बड़े बड़े राजा लोग व्यर्थ में उमाहिये ।
वृन्दावन बास कर नर्क का निवास भला,
वृन्दावन छोड़ नहीं स्वर्ग लोक चाहिये ॥ ८८ ॥

जब से जगत् की अनित्यता का ज्ञान हुआ,
अन्तस्तल तभी से उपेक्षा भाव दे गया ।
धीरे धीरे भागने की इच्छा हो प्रबल उठी,
लालसा मिलन सुकुमार श्याम से गया ॥
जीवन में कठिनाई जो सामने दिखाई दी,
नाविक चतुर वही नाव मेरी खे गया ।
चित्त बिना चेतन शरीर रहे कैसे कहो ?
चित्त चितचोर कोई वृन्दावन ले गया ॥ ८९ ॥

जाता मन दौड़ दौड़ माया मृगतृष्णा मध्य,
करुणा निधान अंतरंग दृष्टि फेर दो ।
छोड़ के उपासना फँसी इन्द्रियाँ बासना में,
ऐहो गोबिन्द ! मेरा गोवृन्द जरा घेर दो ॥

राधा के समेत भव-बाधा सब दूर करो,
हमें बाँकी दिव्य झाँकी दिखा एक बेर दो।
वृन्दावन बीच श्रीवृन्दाबन-बिहारी लाल!
मन्द मन्द हँस के हमारी ओर हेर दो॥ ६०॥

गिरि से गिराओ हमें गज से दबाओ हमें
अतुल निर्दयता से अग्नि में जलाओ नाथ!
काल से डसाओ हमें व्याधि से ग्रसाओ हमें
शंभु से छिनाकर हलाहल पिलाओ नाथ
सिंह से लड़ाओ हमें सिन्धु में डुबाओ हमें,
विजन विपिन बीच बिजली गिराओ नाथ!
घोर से भी घोर दुःख दारुण दिखाओ किन्तु,
हाय! हाय! वृन्दावन-बास ना छुड़ाओ नाथ! ६१॥

स्वर्ग से विशेष जहाँ ब्रज-रस-रसिकों को,
रहता है अतुल उत्साह नित्य आने में।
होता प्रत्यक्ष दिव्य जीवन का विकास जहाँ,
एक बार प्रेम युक्त कृष्ण कृष्ण गाने में॥
प्यारी ब्रजभूमि का प्रभाव ही है ऐसा कुछ,
चित्त फँस जाता पीत नीलाम्बर बाने में।
प्यारे के साथ रहें प्रिया के कुञ्ज महलों में,
कैद कब होंगे हाय! वृन्दावन थाने में? ६२॥

माखन चोर संग चोरी का अपराध किया,
हानि नहीं दण्ड अब जन्म जन्म पाने में।
द्वारपाल साधु औ सिपाही संत सेवक हैं,
गीता कोतवाल रहे गश्त के लगाने में॥
नारद महेश शुकदेव जैसे ज्ञानी जहाँ,
भक्ति रूपी बेड़ी डाल बन्द जेलखाने में।
कृष्ण-पद-प्रेम रूपी तौक जहाँ डाली जाय,
कैद कब होंगे हाय! वृन्दाबन थाने में? ६३॥

विद्या बल पण्डितों का द्रव्य बल धनियों का,
बाहुबल त्यों पहलवानों का विचारा है।
औषधि बल वैद्यों का शान्ति बल साधुओं का,
निन्दा बल नीचों का जगत में पसारा है॥
ज्ञान बल ज्ञानियों का ध्यान बल ध्यानियों का,
भक्ति को प्रबल बल भक्तों में निहारा है।
चाहे जिसे हो हरेकृष्ण! चाहे जिसका बल,
हमें तो केवल वृन्दावन का सहारा है॥ ६४॥

सुन्दर बनी हो रम्य कुटिया हमारी एक,
स्वस्थ हो शरीर कोई व्याधि नहीं मनमें।
जीविका प्रबंध का नियमित सुयोग रहे,
रहना न नाथ! पड़े किसी के शासन में॥
तेरे प्रेम पदों की रचना निरन्तर करूँ,
हरेकृष्ण हरेकृष्ण कीर्त्तन-भवन में।
मोहन मधुर रूप उर में समाये तब,
आये आनन्द अपरम्पार वृन्दावन में॥ ६५॥

बाहर गमन का न मन में विचार उठे,
चाहे तो प्रलाभन कोई लाखों करोड़ दे।
अन्तिम समय में भी धारणा प्रबल मेरी,
जन्म जन्मान्तर को अटूट प्रेम जोड़ दे॥
पीतपटवारो श्याम सन्मुख हमारे आय,
लकुटी समेत नेक भ्रकुटी मरोड़ दे।
वृन्दावन बीच होवे मृत्यु जब हमारी तो,
वृन्दावन रस कोई मुख में निचोड़ दे॥ ६६॥

पीछे मत पड़े मन प्रतिष्ठा पिशाचिनी के,
दीन बन्धु दिल की कुमति हर लीजिये।
स्वाती तुम हो ही नाथ! चातक बनादो मुझे,
प्रेम-रस-प्याला पिलाइये और पीजिये॥

मोहन मधुर रूप उर में दिखाई पड़े,
ऐसी कुछ करुणेश ! कृपा कोर कीजिये ।
चाहते कदापि नहीं मुक्ति मिल जाये नाथ !
बार बार बास हमें बृन्दाबन दीजिये ॥ ९७ ॥

एकन के शीस पै किरीट कान्ति छाय रही,
एकन के शीस पै भली वेणी कसो रहै ।
एकन के अंग पै है पीत पट सोहि रह्यो,
एकन के अंग पै श्याम सारी लसी रहै ॥
एकन को देखि शरमार ने शरीर तज्यो,
एकन को देखि दुखी रति हू रसी रहै ।
वृन्दावन-चन्द्रिका नैनन में बास करै औ,
वृन्दावन-चन्द्र-छबि उर में बसी रहै ॥ ९८ ॥

बार बार धूल का आवरण कर देने से,
क्षीणता कदापि नहीं होगी रत्न छबि की ।
घुमड़ घुमड़ घन घोर घटा छाती रहे,
तो नष्ट हो सकती क्या दिव्य ज्योति रवि की ?
व्योम-पथ-बीच जाले मकड़ों के तानने से,
तीव्र गति रुकेगी न वज्रपात पवि की ।
दुर्जन बचन से न कीर्ति कम होगी कभी,
वृन्दावन वासियों की 'हरेकृष्ण' कवि की ॥ ९९ ॥

सहपाठी श्रीमंगलीप्रसाद के मरण से,
अपने मिलन का मार्ग मोहन दिखा गया ।
शिवली पाठशाला कृष्ण-कीर्त्तन-भवन में,
आधी रात आकर रूप चसका चिखा गया ॥
वृन्दावन-धाम के अथाह प्रेम-सागर में,
बार बार डुबा के प्रेम करना सिखा गया ।
बुध चतुर्थ दिसम्बर सन् छियालिस को,
वृन्दावन शतक वृन्दाबन में लिखा गया ॥१००॥

❀ श्याम-संगीत ❀

(१)

श्री कृष्ण ! श्री कृष्ण ! हरे ! मुरारे !
श्री कृष्ण ! श्री कृष्ण ! मुकुन्द ! प्यारे !!

(२)

जय मनमोहन जय घनश्याम ।
जपो निरन्तर राधेश्याम ॥

(३)

आनन्द है आनन्द राधे कृष्ण में आनन्द है ।

(४)

कोई बतलादे हमें श्याम को आते देखा ।
तीर जमुना के कहीं गाय चराते देखा ॥
सूर्य भगवान ! जरा करदो इशारा हम से ।
कौन सी कुञ्ज में राधा को बुलाते देखा ॥
वायु ! बतलादो तुम्हीं बलराम के भैया को ।
कौन स्वर तान में बंशी को बजाते देखा ॥
हाय ! हरेकृष्ण ! जो दर्शन न हुये मोहन के ।
व्यर्थ पशु तुल्य वहाँ जन्म गँवाते देखा ॥

(५)

दयामय ! दीन की इतनी विनय स्वीकार होजाये ।
तो निश्चय दुःख-सागर से ये बेड़ा पार हो जाये ॥
मिटें सब कष्ट जनता के सुखी सब देश वासी हों ।
दया की दृष्टि भारत पर अगर एक बार हो जाये ॥
सहायक कौन है अपना पड़ी मँझधार में नैया ।
करो ऐसा कि मेरा भी प्रभो ! उद्धार हो जाये ॥
छिड़ी हो तान मुरली की रचा हो रास राधा का ।
वही छवि देख चरणों पर ये तन बलिहार हो जाये ॥

(६)

तुम्हीं हो प्राण से प्यारे, तुम्हीं जीवन हमारे हो।
तुम्हीं हो प्रेम की मूरति, तुम्हीं आंखों के तारे हो॥
तुम्हीं ब्रज के विहारी हो, तुम्हीं मोहन मुरारी हो।
तुम्हीं घनश्याम सुन्दर हो, तुम्हीं लीलावतारी हो॥
तुम्हीं प्रभु भक्तवत्सल हो, तुम्हीं करुणा निकेतन हो।
तुम्हीं सर्वज्ञ सर्वेश्वर, अमर अखिलेश चेतन हो॥
तुम्हीं हो विश्व के त्राता, तुम्हीं आनन्द-दाता हो।
तुम्हीं माता पिता सब के, तुम्हीं ज्ञाता विधाता हो॥
कहीं पर चक्रधारी तुम, लिये वंशी कहीं तुम हो।
कहे कोई तुम्हें कैसे, जहाँ देखो तुम्हीं तुम हो॥

(७)

मेरे इस दिल की दुनिया का, सरकार बाँसुरी वाला है।
शक्ति शील सौन्दर्य प्रेम का, अवतार बाँसुरी वाला है॥
गीता ज्ञान सुनाया उसने, रास विलास रचाया उसने।
सम्पूर्ण गुणों से भरा हुआ, भण्डार बाँसुरी वाला है॥
मनमोहन मदन-विजेता है, नेताओं का भी नेता है।
अर्जुन का सखा गोपियों का, दिलदार बाँसुरी वाला है॥
हरेकृष्ण! आनन्द वही है, कृष्णचन्द ब्रजचन्द वही है।
देता सच्चे भक्त जनों को, दीदार बाँसुरी वाला है॥

(८)

क्या अजब रूप से बसे हुये, सरकार हमारी आँखों में।
हरदम रहता कृष्णचन्द्र का, दीदार हमारी आँखों में॥
यक तीर हृदय में भेद गया, मनमोहन छाती छेद गया।
अब रंग न कोई चढ़ सकता, बेकार हमारी आँखों में॥
हँसता कभी कभी मैं रोता, नाच नाच कर नेत्र भिगोता।
संसार की आँखों में पागल, संसार हमारी आँखों में॥
यह महिमा भगवन्नाम की है, यह लीला राधेश्याम की है।
कण कण है हरेकृष्ण! कृष्ण का, अवतार हमारी आँखों में॥

वृन्दाबन हो स्थान मनोहर, शुभ वसंत ऋतु आया हो।
कुञ्ज कुञ्ज में कली कली में, कलित कला से छाया हो॥
मोर मोद से नाच रहे हों, कोकिल राग सुनाती हो।
शीतल वायु सुगन्ध भरी, मंद मंद कुछ आती हो ॥१॥
कालिन्दी की गुप्त वेदना, लहरों ने प्रगटाई हो।
मैं क्या कहूँ वहो मन हरणी, अकथनीय छवि छाई हो॥
अर्द्ध रात्रि के समय शान्तिमय, चन्दा की उजियारी हो।
शब्द अचानक इसी समय में, जय जय कुञ्जविहारी हो ॥२॥
मुख पर हो मुसकान मनोहर, तिरछी चितवन किये हुये।
केशर का कमनीय कान्तिमय, तिलक भाल में दिये हुये॥
अनमोल कपोलों के ऊपर, कुछ हल्की सी लाली हो।
प्रेमी को प्रत्येक छटा, मदमस्त बनाने वाली हो ॥३॥
मणिमय रासस्थली बनाकर, रास विलास रचा जावे।
नभ मण्डल से सुर वृन्द देखकर, जय जयकार मचा जावे॥
सखियाँ हँस हँस परम प्रेम से, हरि के संग बिहार करें।
भक्तजनों के सरल हृदय में, शान्ति-सुधा संचार करें ॥४॥
मुकट चन्द्रिका मिलें परस्पर, झाँकी दिव्य बनाई हो।
मुख मण्डल पर केश कमरिया, कमर तलक लटकाई हो॥
अङ्ग अङ्ग की छटा निराली, रोम रोम छवि छाई हो।
मुरली मधुर तान को लेकर, कुछ अधरों तक आई हो ॥५॥
पास खड़ी वृषभानु–किशोरी, मंद मंद मुसकाती हो।
जिसके कारण वंशी ध्वनि कुछ, कभी कभी हो जाती हो।
छूट पड़े फिर मुरली कर से, राधा झुकें उठाने को।
बढ़े नटखटी हाथ तुम्हारा, गलमाला बन जाने को ॥६॥
देख चतुरता सब सखियों में, हास बिलास करारा हो।
जय श्रीकृष्ण! कहूँ मैं झट पट, जीवन सफल हमारा हो॥
चरण कमल पर मस्तक रखकर, फिर मैं प्राण निसार करूँ।
हृदयेच्छा 'हरेकृष्ण' यही बस, तन मन धन बलिहार करूँ ॥७॥

(१०)

जरा मोहन ! कृपा करके, छटा अपनी दिखा देना।
हृदय के हौसले कुछ तो, दुखी जन के मिटा देना॥

हमारे प्राण जब निकलें, करें सुरपुर की तैयारी।
तो तुम तिरछे खड़े होकर, मधुर मुरली बजा देना॥

तथा उस जन्म में मुझ को, बनाना नाथ ! यदि पत्थर।
तो गोवर्द्धन ही पर्वत का, कोई टुकड़ा बना देना॥

बनाना पशु अगर कोई, तो होवें नन्द अधिकारी।
मुझे यक वार गायों में, जरा तुम भी चरा देना॥

वनूँ पक्षी अगर मैं तो, विनय है आपसे मेरी।
हमारा घोंसला स्वामी ! निकट जमुना बसा देना॥

तुम्हारी मंजु बनमाला, बना दूँ फूल बनकर मैं।
बनूँ गर धूल तो भगवन् ! चरण अपना चला देना॥

यही 'हरेकृष्ण' की विनती, सदा गोविन्द ! है तुम से।
मुझे भी रखना सेवा में, नहीं दिल से भुला देना॥

(११)

अखिल लोक लीला रचाते तुम्हीं हो।
विविध वेश धर धर के आते तुम्हीं हो॥

लगे नेत्र जाकर जहाँ जिस समय में।
वहाँ श्यामसुन्दर ! दिखाते तुम्हीं हो॥

श्रवण शब्द कोई नहीं अन्य सुनते।
सदा मंजु मुरली सुनाते तुम्हीं हो॥

रमे हो रमानाथ ! कण कण में फिर भी।
प्रवल भेद माया का लाते तुम्हीं हो॥

करो दूर हम तुम तुम्हीं फिर तुम्हीं हो।
कहें भक्त-गण क्या ? कहाते तुम्हीं हो॥

(१२)

नादान कुछ मीरा न थी उसको भी खूब शऊर था।
पर क्या करे वह दिल ही उसका हो रहा मजबूर था॥
श्रीकृष्ण आयेंगे स्वयं यह जानती थीं गोपियाँ।
वरना न मथुरा का नगर कुछ भी वहाँ से दूर था॥
चैतन्य सी मस्ती किसे आयी भला संसार में।
श्रीकृष्ण मदिरा पीके हरदम हो रहा जो चूर था॥
हरेकृष्ण! मैंने यह गजल लाचार होकर के लिखा।
श्रीकृष्ण-पीड़ा से हृदय जब हो रहा भरपूर था॥

(१३)

वृन्दावन में जरा आजाद टहलने न दिया।
कफस में कैद किया हाथ भी मलने न दिया॥
सूर रसखान घनानन्द सी होगयी हालत।
रूप सरिता में पड़े मन को उछलने न दिया॥
चित्त लुभाया हरेकृष्ण! सताया लेकिन।
प्रेम प्रत्यक्ष कभी हाय! उबलने न दिया॥
गोद में बैठ नहीं मोद से मक्खन खाया।
हौसला दिलका कभी नाथ! निकलने न दिया॥

(१४)

रोते रोते तेरी फुर्कत में जिगर बैठगया।
मुरलीवाले! तू मेरे जाके किधर बैठ गया॥
याद में तेरी हुये घर बरबाद अनेकों।
कोई गोकुल के इधर कोई उधर बैठ गया॥
मोह किस तौर रहे दुनियाँ से बता मोहन!
चीर कर दिल को तेरा तीरे नजर बैठ गया॥
हाय! हरेकृष्ण! नहीं कुछ भी सुहाता मुझ को।
हृदय में जब से मेरे कान्ह कुँवर बैठ गया॥

(१५)

नन्द दुलारे कृपा करो।
प्रियतम प्यारे कृपा करो॥
व्रज रखवारे कृपा करो।
संत सहारे कृपा करो॥ १॥

गर्व प्रहारी कृपा करो।
गिरिवरधारी कृपा करो॥
कुञ्ज-बिहारी कृपा करो।
कृष्ण मुरारी कृपा करो॥ २॥

चीर चुरैया कृपा करो।
रास रचैया कृपा करो॥
नाग नथैया कृपा करो।
कुँवर कन्हैया कृपा करो॥ ३॥

सब गुण आगर कृपा करो।
रूप उजागर कृपा करो॥
करुणा-सागर कृपा करो।
ओ नटनागर! कृपा करो॥ ४॥

(१६)

पधारो नाथ! पूजा को, हृदय-मन्दिर सजाया है।
तुम्हारे वास्ते आसन, बिमल मन का बिछाया है॥
लिये जल नेत्र पात्रों में, खड़े पद कंज धोने को।
पहिन लो प्रेम का गजरा, बहुत सुन्दर बनाया है॥
सजायी आरती हमने, अमित अनुराग की स्वामी!
नया नैवेद्य कीर्त्तन का, परम रुचिकर लगाया है॥
नहीं हैं वस्त्र आभूषण, करूँ हरेकृष्ण! क्या अर्पण?
यही पद भेंट है केवल, जिसे गाकर सुनाया है॥

(१७)

नाव मँझधार में लाकर न डुबाना मोहन।
पार इस भवसिन्धु से शीघ्र लगाना मोहन॥
देख कठिनाई कभी साहस न घटे प्यारे!
पैर दृढ़ता से सदा आगे बढ़ाना मोहन॥
सत्य सन्तोष क्षमा धैर्य से प्रेम निरन्तर।
मोह ममता में नहीं भूल फँसाना मोहन॥
कृष्ण कविता के रहस्यों को भला जाने कौन?
चित्त में बैठ तुम्हीं भाव बताना मोहन॥

(१८)

मोहन छवि दिखलाय। बँसुरिया दीजै श्याम बजाय॥
मोर मुकुट शिर ऊपर राजै।
केशर तिलक भाल में साजै॥
कंठ बीच बनमाल बिराजै।
पीताम्बर फहराय॥ बँसुरिया०॥
कुञ्जन विहरत कुञ्ज विहारी।
आस पास ललितादिक प्यारी॥
सँग सोहैं राधा सुकुमारी।
मधुर मधुर मुसकाय॥ बँसुरिया०॥
करुणासिंधु कृपा अब कीजै।
पाप ताप सबरे हर लीजै॥
दर्शन दान दया कर दीजै।
हरेकृष्ण! हरषाय॥ बँसुरिया०॥

(१९)

कान्हा! कौन है जादू बँसुरिया माँ।
बंशी ध्वनि जब आपने कीन्ही।
घर घर से गोपी चलि दीन्ही॥
लोक लाज कुल कानि न चीन्ही।
मनलागो है कारी कमरिया माँ॥ कान्हा०॥

गोधन में राग रागिनी गावै ।
बार बार मन को ललचावै ॥
खान पान कछु नाहिं सुहावै ।
विष घोरो है तेरी नजरिया मां ॥ कान्हा० ॥
मोहन रूप हृदय में धरले ।
हरेकृष्ण ! अब शीघ्र सुधरले ॥
जो कुछ करना हो सो करले ।
समय थोरो है वाकी उमरिया मां ॥ कान्हा० ॥

(२०)

सता हमको न तू माया हमें श्रीकृष्ण कहने दे ।
उन्हीं के रूप सागर में हमें दिन रात बहने दे ॥
जिन्हें हैं चाहती लक्ष्मी तथा त्यागी तपस्वी भी ।
उन्हीं श्रीकृष्ण प्यारे के चरण कमलों में रहने दे ॥
बना हूँ प्रेम में पागल न मुझको छेड़ ऐ दुनियाँ !
उड़ा ले मौज तू जीभर हमें दुख-दर्द सहने दे ॥
हृदय हरेकृष्ण ! अब साधन न कोई दूसरा चाहे ।
जिसे चैतन्य ने चाहा वही पथ प्रेम गहने दे ॥

(२१)

बैठे हृदय में श्याम तुमको बिठाकर क्या करूँ ।
बोलते ब्रजराज जब तुम से बताकर क्या करूँ ॥
झूमता उन्मत्त होकर कृष्ण-चरणामृत पिये ।
भंग ठंढाई तथा शर्बत पिला कर क्या करूँ ॥
कृष्ण ने जो कुछ दिया पाकर वही सन्तुष्ट हूँ ।
मिष्टान्न मेवा और मोदक खिला कर क्या करूँ ॥
रम्य सेवाकुञ्ज निधिवन की निकुञ्जें हैं यहाँ ।
ईंट पत्थर के मकानों को बना कर क्या करूँ ॥
स्वर्ग सुख अनुभव कलेवर कर रहा ब्रजधूल में ।
व्यर्थ गद्दे और तकियों पर सुलाकर क्या करूँ ॥

कान हर दम सुन रहे बंशी मधुर घनश्याम की।
तुच्छ संसारी उन्हें गायन सुना कर क्या करूँ ॥
नेत्र सन्मुख देखते हैं रूप प्यारे श्याम का।
खेल नौटंकी तथा नाटक दिखा कर क्या करूँ ॥
हरेकृष्ण ! निन्दा प्रशंसा की नहीं परवाह है।
हो गया आनन्द दुनियाँ को रिझाकर क्या करूँ ॥

(२२)

जान कर जगदीश जग की जानकारी क्यों करूँ ?
सेव्य हैं भगवान् तब सेवा तुम्हारी क्यों करूँ ?
विष्णु विश्वम्भर वही सकल संसार के स्वामी।
अन्न वस्त्रों के लिये सोचा विचारी क्यों करूँ ?
चित्त चिन्तन कर रहा है तैलधारावत् उन्हें।
बन यहीं बन जायगा बन की तयारी क्यों करूँ ?
प्रेम मेरे चित्त का वह जानते सर्वज्ञ हैं।
हाय ! राधेकृष्ण मनमोहन मुरारी क्यों करूँ ?

(२३)

हमारा प्यारा वृन्दावन !
जिसके निर्मल नव निकुञ्ज में बिहरे श्री ब्रजमोहन।
जगज्वाल में जलते जीवों को जो है शान्ति-निकेतन ॥
जहाँ निरन्तर धाम धाम में होता है संकीर्त्तन।
हरेकृष्ण ! जीवन का जीवन वही हमारा वृन्दावन ॥

❀ श्याम-शतक ❀

❀ दोहा ❀

खंजन मृग सरमाय के, विपिन बसैं दिनरैन।
सफरी सरसिज जल छिपे, देखि श्याम के नैन ॥ १ ॥
परम पियारे लगत हैं, हरि के मंजु कपोल।
मनुहुँ मनोभव के लगे, दर्पण युगल अमोल ॥ २ ॥
मुरली मधुर बजाय के, हँसत जबहिं घनश्याम।
जानि परैं घन बीच जनु, दमकि रही घन बाम ॥ ३ ॥
परम मधुर बोलत बचन, सुभग श्याम सिर मौर।
मुख सरोज में बैठि के, मनहुं गुञ्जरत भौंर ॥ ४ ॥
मुरलीधर के बदन यों, पीताम्बर फहरात।
जैसे श्यामल मेघ पै, विद्युत है लहरात ॥ ५ ॥
महा मनोरम श्याम के, कर करुह दिखरात।
जनु सरसीरुह दलन पै, मोतिन पाँति सुहात ॥ ६ ॥
ज्यों ज्यों निरखत राधिका, अनियारे दृग तान।
त्यों त्यों निकरत साँवरे, रूप रतन को खान ॥ ७ ॥
मेरे नैन निकुञ्ज में, रम्य रमा के साथ।
मंजुल मूरति माधुरी, नचै निरन्तर नाथ ॥ ८ ॥
जेतो विधि तीखी रची, तव नैनन की कोर।
अधिक कहूँ ताते रच्यो, मेरो हियो कठोर ॥ ९ ॥

कहा धरावे नाम के, मनमोहन अभिराम।
जब तुम राखो नेक हू, मन मोह न घनश्याम ॥ १० ॥
छाया काया श्याम की, धूप राधिका रूप।
देखो राधेकृष्णमय, कैसा जगत अनूप ॥ ११ ॥
रोम रोम में जाय रम, मेरे ओज अखण्ड।
कीर्त्तन का संसार में, करूँ प्रचार प्रचण्ड ॥ १२ ॥
प्रात जन्म अब ते जगे, मृत्यु है निद्राकाल।
आयु दिवस भर शीघ्र ही, भजले नन्द गोपाल ॥ १३ ॥
पागल होना है अगर, प्रभु पर पागल होय।
जो पागल संसार हित, महा मन्दमति सोय ॥ १४ ॥
दुःख अप्रिय संयोग में, प्रिय वियोग में खेद।
फिर बोलो क्या मित्रवर! शत्रु मित्र में भेद ? १५ ॥
मानुष तन को पाय के, सब संकल्प बिसार।
प्राप्त करै भगवान को, यह सिद्धान्त हमार ॥ १६ ॥
प्रभु तुम मिलने के लिये, सदा खड़े तैयार।
लेकिन हम करते नहीं, सच्ची प्रेम पुकार ॥ १७ ॥
कल की चिन्ता किस लिये, करते हो तुम आज।
ऐसा उद्यम कीजिये, मिलैं आज ब्रजराज ॥ १८ ॥
कृष्ण! तुम्हारे रूप पर, लाखों हुये फकीर।
वही दशा इस दास की, होन चहै दिलगीर ॥ १९ ॥
हाय! इन्द्रियों ने किया, नष्ट अमूल्य शरीर।
अब तो रक्षा कीजिये, कृपासिन्धु यदुवीर ॥ २० ॥
और न हमको चाहिये, सुत वित दारा गेह।
चाहत केवल हम सदा, तव पद सत्य सनेह ॥ २१ ॥
क्या मैं माँगू आपसे, तन मन जीवन भार।
दिया आपने उसी से, होता कष्ट अपार ॥ २२ ॥
यद्यपि सब के हृदय में, करते हो तुम वास।
लेकिन राधेकृष्ण हूँ, मम उर करहु निवास ॥ २३ ॥

मेरे मन में नाथ ! बस, रहै एक अभिमान ।
मैं सेवक श्रीकृष्ण का, पति मेरे भगवान ॥ २४ ॥
एक ओर मम मृत्यु है, तव दर्शन इक ओर ।
जो चाहो सो दीजिये, प्यारे नन्द किशोर ॥ २५ ॥
तन मन जीवन आपका, लीजै इसे सम्हार ।
केवल दर्शन दीजिये, दुखिया दास निहार ॥ २६ ॥
यह आशा तन मन सहित, तुम्हें समर्पित नाथ !
जो चाहे सो कीजिये, कृपासिन्धु यदुनाथ ॥ २७ ॥
और विपति नाहीं कछू, मोहिं विपति प्रभु सोय ।
जाहि समय तव प्रेम से, सुमिरण भजन न होय ॥ २८ ॥
यह शरीर रथ रूप है, मन है अश्व समान ।
आत्मा पारथ के बनो, सारथि श्री भगवान ॥ २९ ॥
माया बन्धन अति कठिन, छूटत नाहिं दिखाय ।
शरण तुम्हारी आपके, कृपाकरो यदुराय ॥ ३० ॥
मम पापन को हाय ! प्रभु, कबहूँ ह्वै है अन्त ।
निशिदिन रटि हौं प्रेम से, कृष्ण कृष्ण भगवन्त ॥ ३१ ॥
राम वही शंकर वही, वही कृष्ण भगवान ।
किन्तु मित्रवर चित्त मम, विंध्यो श्याम दृग बान ॥ ३२ ॥
चलेजात मुरली लिये, हँसत हेरि घनश्याम ।
सो छबि सुन्दर राखि उर, जपत रहौ हरिनाम ॥ ३३ ॥
कहै सुनै जो हरि कथा, सो मम प्यारो होय ।
कृष्ण विमुख जो जगत में, मोहिं न भावै सोय ॥ ३४ ॥
गर्ग संहिता भागवत, मिलै न सुख स्वच्छन्द ।
जितना राधे कृष्ण के, कहिबे में आनन्द ॥ ३५ ॥
कृष्ण कथा राधा कथा, नहिं मैं पूछौं तोहिं ।
केवल राधे कृष्ण ये, अक्षर प्यारे मोंहिं ॥ ३६ ॥
जिह्वा केवल रट रही, राधे राधे ! श्याम ।
मन कुछ सोचै और तो, सुमिरण है बेकाम ॥ ३७ ॥

कह देता झट जीभ से, रट तू राधेश्याम।
स्वयं कहीं जाता निकल, मन तू बड़ा हराम ॥ ३८ ॥
कृष्ण भक्त कहलाय के, क्यों फिर याचै और।
कृष्णचन्द्र सम जगत में, को दाता शिरमौर ? ३९ ॥
धन योवन के फेर में, क्यों तू जाता भूल ?
यह रौनक दिन चार की, अन्त धूल की धूल ॥ ४० ॥
पूर्व जन्म के पुण्य ने, तुमको दिया चेताय।
अब मत भूलो प्रेम पथ, भजो कृष्ण मन लाय ॥ ४१ ॥
तब तब करते मित्रवर, अवसर बीता जाय।
प्रभु पद पंकज शीघ्र ही, हृदय लेहु लपटाय ॥ ४२ ॥
मन ! तू चिन्ता किसलिये, करता बारम्बार।
कर्त्ता धर्ता कृष्ण हैं, तेरा क्या अधिकार ? ४३ ॥
मन ! तू करता क्यों नहीं, मनमोहन सों प्यार।
उलझ पुलझ मर जायगा, कंटक मय संसार ॥ ४४ ॥
व्यर्थ सभी है सोचना, ऐरे चित्त ! गवाँर।
जब तक तू होता नहीं, हरि में एकाकार ॥ ४५ ॥
जो देखा जो कुछ सुना, सो सब देहु विसार।
केवल उर में प्रेम से, राखहु नन्दकुमार ॥ ४६ ॥
ताहि चित्त में समझिये, पापोदय यहि काल।
जाहि समय तब ध्यान सों, विसरें नन्दगोपाल ॥ ४७ ॥
श्वास के आवत जात में, राधे कृष्ण समाय।
आनँद सों अन्तः करण, उछल उछल रह जाय ॥ ४८ ॥
जब जब आवे मार्ग में, माया कंटक डाल।
तब तब काटो शीघ्र ही, गीता शस्त्र सँभाल ॥ ४९ ॥
स्वप्न तुल्य इस जगत से, डरना है अज्ञान।
निर्भय होकर प्रेम से, भजो कृष्ण भगवान ॥ ५० ॥
हम कुछ करते हैं नहीं, जो कुछ करते श्याम।
अहंभाव को छोड़कर, बनो भक्त निष्काम ॥ ५१ ॥

देखो आगे मित्रवर ! बुला रहे घनश्याम ।
भक्त न माया में फँसो, बढ़े चलो ममधाम ॥ ५२ ॥
यद्यपि हरि सम भाव से, व्यापक हैं सब ओर ।
बिना प्रेम प्रगटत नहीं, नटवर नन्द किशोर ॥ ५३ ॥
और न सोचो अब कछू, जपन लगौ हरिनाम ।
श्रद्धा निश्चय राखहू, मिलि हैं राधेश्याम ॥ ५४ ॥
यक दम ऊँचे वृक्ष चढ़ि, गिरौ न नीचे आन ।
शनैः शनैः साधन करो, तब हू है कल्यान ॥ ५५ ॥
इधर उधर क्यों घूमते ? कीजै शान्त बिचार ।
उसी सच्चिदानन्द को, ढूँढ़ रहा संसार ॥ ५६ ॥
इस अशान्त संसार में, कहाँ शान्ति आराम ।
धन्य तपोवन ऋषिन के, शान्ति सदन सुख धाम ॥ ५७ ॥
ना कछु माँगै काहु सों, हुक्म न काहू देय ।
ऐसो नर संसार में, सहज देव पद लेय ॥ ५८ ॥
हीरा सम श्री कृष्णकी, जब हम करते बात ।
कौड़ी सम इस विश्व पर, तब क्यों डारें घात ॥ ५९ ॥
निन्दक निकट बसाइये, आँगन कुटी छवाय ।
जाहि कृपा बल ते सकल, पाप दोष कटिजाय ॥ ६० ॥
निन्दा स्तुति मित्रवर ! कोऊ करै हमारि ।
समय कहाँ जो हम सुनैं, सेवत चरण मुरारि ॥ ६१ ॥
यह सब लीला कृष्ण की, भला बुरा नहिं कोय ।
जब जेहि जस यदुपति करैं, सो तब तैसे होय ॥ ६२ ॥
हिन्दी उर्दू व्याकरण, संस्कृत पढ़ी तमाम ।
सार निकारो सबन को, केवल राधेश्याम ॥ ६३ ॥
सपने में शय्या निकट, लागै यथा समुद्र ।
तैसे झूठे जगत को, सच्चा समझै क्षुद्र ॥ ६४ ॥
भोजन मैथुन के समय, जबलौं रहै अभाव ।
तब लौं सुख स्थिर रहै, सुख है आत्मिक भाव ॥ ६५ ॥

मत भागो बन की तरफ, तजो यहीं गृहशोक।
साधन है उसलोक का, सर्वोत्तम यह लोक॥ ६६॥
लाभ कहा वैद्यक पढ़े, का है ज्योतिष माँहि।
कृष्ण भक्त के वास्ते, रोग महूरत नाहिं॥ ६७॥
राग द्वेष को त्याग के, इन्द्रिय विजयी होय।
धर्म परायण सर्वदा, पण्डित कहिये सोय॥ ६८॥
ब्रह्म ज्ञान बहुतै कठिन, कठिन योग की शक्ति।
करो मित्रवर इसलिये, सरल कृष्ण की भक्ति॥ ६९॥
जैसे सपने के समय, सब कुछ सत्य दिखाय।
वैसे सोवत जीवत कँह, यह संसार सुहाय॥ ७०॥
जवलौं प्रभु के पद कमल, करैं हिये में वास।
तब लौं जागत जीव नहिं, निद्रा नरक निवास॥ ७१॥
अन्न छोड़ने के प्रथम, छोड़ मोह मद मान।
मन से भजिये कृष्ण को, तब हौ है कल्यान॥ ७२॥
कृष्ण समर्पण कर प्रथम, एकाकी सुख पाय।
प्रीति सहित भोजन करै, लोभ लाज बिसराय॥ ७३॥
कर्म सदा करते रहो, करो न कबहूँ त्याग।
कर्म त्याग से मित्रवर! है आलस्य अभाग॥ ७४॥
भजन मानसिक कर्म है, मन जब निश्चल होय।
कर्म स्वयं तजि हैं तुम्हें, चंचलपन को खोय॥ ७५॥
मातु भुलावन के लिये, सुतहिं खिलौना देय।
तब हूँ जो रोवत रहै, ताहि गोद फिर लेय॥ ७६॥
जो नर भोग पदार्थ न, तजै हलाहल मान।
रोय पुकारैं प्रेम सों, मिलैं ताहि भगवान॥ ७७॥
इस अनित्य संसार में, नित्य एक भगवान।
उन्हें न भजता मूढ़ क्यों, छोड़ मोह मद मान॥ ७८॥
यह सब सुनना व्यर्थ है, ऐहो मेरे कान!
नहिं प्रसन्न जग है भयो, नहिं रीझे भगवान॥ ७९

चित्त ! तुझे एकान्त में, समझाया सौ बार ।
मगर नहीं तू छोड़ता, अपना कारो बार ॥ ८० ॥
मूरख मन तू किस लिये, इधर उधर को जाय ।
देख हृदय में आपने, सब कुछ रहा सुहाय ॥ ८१ ॥
मन तू जिसके वास्ते, बार बार ललचाय ।
कृष्ण कृपा से शीघ्र सो, चरणन गिरि है आय ॥ ८२ ॥
दुःख ! तुम्हीं ने कृष्ण का, हमें बनाया दास ।
अतः प्रेम से तुम सदा, रहो हमारे पास ॥ ८३ ॥
दुःख प्रतीक्षा नित्य उठ, करिये प्रातः काल ।
जिससे तुम को शीघ्र ही, मिलैं कृष्ण गोपाल ॥ ८४ ॥
पढ़ना होता इस लिये, समझौ सारासार ।
सार न समझो मित्रवर ! तौ पढ़ना बेकार ॥ ८५ ॥
मन फेरै जिस फेर में, फिरौ न उसमें भूल ।
यक दम उसके मित्रवर ! हो जाओ प्रतिकूल ॥ ८६ ॥
प्रभु की माया के लिये, वृथा दोष तू देत ।
देख आपने चित्त को, कितना दोष निकेत ॥ ८७ ॥
पूर्व पाप जो कुछ किये, उनका तो फल भोग ।
फिर तेरे मिट जाँयगे, भय दुख चिन्ता रोग ॥ ८८ ॥
यह सब प्रभु का जगत है, रहना है दिन चार ।
प्रेम वैर फिर परस्पर, करना है वेकार ॥ ८९ ॥
इधर उधर क्यों देखकर, करते हो उत्पात ?
मारग में चीटी मिलैं, उनसे करिये बात ॥ ९० ॥
वृथा छिपावै ओट में, प्रभु से पाप छिपे न ।
देखत उनके रात दिन, चन्द्र सूर्य युग नैन ॥ ९१ ॥
वृक्ष प्रतिष्ठा छाँह तर, सो मत जाना यार ।
मार्ग दूर है प्रेम का, चले चलो हुशियार ॥ ९२ ॥
हाय ! काम तू व्यर्थ में, हमको रहा सताय ।
अन्त न तेरा हो कभी, जन्म जन्म चलिजाय ॥ ९३ ॥

ब्रह्म-प्राप्ति का मित्रवर ! ब्रह्मचर्य्य है मूल ।
बिना मूल रक्षा किये, प्रभु न होंय अनकूल ॥ ६४ ॥
ईश्वर के सब जीव हैं, कापर करिये क्रोध ।
प्रिय अप्रिय में सर्वदा, राखहु तुल्य प्रबोध ॥ ६५ ॥
देखो कंचन कामिनी, इधर उधर दो श्वान ।
भूँक भूँक कर जोर से, भुला रहे भगवान ॥ ६६ ॥
अस्थि मांस अरु रुधिर का, है यह तुच्छ शरीर ।
इसमें सुन्दरता कहाँ, जिस पर हुआ अधीर ॥ ६७ ॥
स्वारथ के सब मीत हैं, काको कासों नेह ।
आतम सुख के वास्ते, नर छोड़े नर देह ॥ ६८ ॥
जाहि समय जेहि भाँति सों, राखैं श्री यदुबीर ।
ताहि समय त्यों हर्ष सों, रहहु धीर गम्भीर ॥ ६९ ॥
जीवन के जीवन तुम्हीं, प्राणों के तुम प्राण !
अहो कृष्ण ! करुणायतन, करो शीघ्र कल्याण ॥१००॥
भव दावानल–त्राण का, पूछे कोई प्रश्न ।
ब्रह्मचर्य–पालन तथा, संकीर्त्तन श्रीकृष्ण ॥१०१॥
साधन पथ में जो हुये, अनुभव अति गम्भीर ।
'श्याम-शतक' में लिखदिये, वही सकल मतिधीर ॥१०२॥

❀ राम-लीला ❀

—— :❀: ——

प्रबन्धक— कवित्त

क्या ही सजीला यह रँगीला मंजु मण्डप है,
सभा का भी रङ्ग कहीं नीला कहीं पीला है।
बैठे सब लोग अपने अपने स्थानों पर,
कैसा रमणीय रूप राम का रसीला है।
रक्खा है गर्वीला रङ्ग भूमि में छबीला चाप,
देखलो प्रबन्ध में न कोई काम ढीला है॥
ब्रह्मानन्द से भी विशेष सुख उपजे अभी,
देखो भक्तिशीला शुरू होती राम-लीला है॥

माली— गायन

देखो गुल गुलनार। बाग में छाई अजब बहार॥
चहुंदिशि फूल रही फुलवारी। खूब रहे गुलजार॥ बाग०॥
आहा! कैसी प्यारी न्यारी। फूल रही है क्यारी क्यारी॥
लगती मन को प्यारी प्यारी। यह कनैल कतार॥ बाग०॥
कलगा कहीं केतकी केली। चम्पा चन्दन चारु चमेली॥
फूली मौलसिरी अलबेली। फूल रहे कचनार॥ बाग०॥

माली—(सीतागमन के समय) गायन

चमन में इस समय सीता कुमारी आने वाली हैं।
इसीसे कंज की कलियाँ सभी मुरझाने वाली हैं॥
निवारी गिरगई नीचे, सिधारी स्वर्ग गुलप्यारी।
पपी की पंक्तिया प्यारी, प्रबल दुखपाने वाली हैं॥

हँसो हंसों की है भूली, मरे से मोर अब लगते।
मछलियाँ भी सरोवर में, शरम से जाने वाली हैं॥
सुनो 'हरेकृष्ण' की विनती, समय कैसा सुहावन है।
हमें दे जानकी दर्शन, दया बरसाने वाली हैं॥

राम—(चन्द्रोदय देखकर) कवित्त

दूर कर काले रङ्ग वाला ये कुरूप व्योम,
सीता के भवन जैसा सुन्दर बनाया जाय।
घटना हो बन्द नित्य वृद्धि की घटना घटे,
ऐसी किसी औषधि के रस में सनाया जाय॥
चन्द्र ग्रहणादि का न नाम रहे ज्योतिष में,
सर्वदा सुमोद सदा मंगल मनाया जाय।
संभव है हरेकृष्ण! बने सीता मुख सम,
नित्य नित्य नया जब चन्द्रमा बनाया जाय॥

प्रबन्धक— गायन

मुनिनाथ साथ देखा रघुनाथ आ रहे हैं।
नर नारि नैन सबके उस ओर जा रहे हैं॥
क्या रूप है अलौकिक? वर्णन किया न जाता।
इच्छानुसार दर्शन सब लोग पा रहे हैं॥
हम कह नहीं हैं सकते स्वयमेव तुम समझ लो।
राजा हृदय में अपने क्या भाव ला रहे हैं॥
अभि देखलो निरख लो निकला समय है जाता।
संक्षेप में इसीसे 'हरेकृष्ण' गा रहे हैं॥

विदूषक— कवित्त

तार और टेलीफोन मिले जब दोनों मुझे,
बारह नारों में जो उपाय सजाया है।

सवा सौ सम्वतों में बैठगया उस पर मैं,
कोटि कोटि कल्पों तक घोड़ों को भगाया है ॥
पाँच सात प्रलयों में आगया मिथिलापुर,
शीघ्र जानकी बुलाओ जी! जी, मचलाया है।
ब्याह में बहाना भला करेंगे विदेह कैसे?
इतनी जल्दी में जब राजपुत्र आया है ॥ १ ॥
अस्सी मील आटा हो कम से कम मेरे लिये,
दाल का प्रबन्ध एखत्तर इञ्च न्यारा हो
बाईस सौ बोरियाँ दूध दही और घी की हो,
नव सौ नव्वे बीघा नमक का नजारा हो ॥
कुछ करोड़ से ज्यादा किराचियाँ खटाई की,
मिठाई का जहाँ तक संख्या का किनारा हो।
छोड़ कर ऊपरी सामान सब इतने में,
एक पहर शायद भोजन हमारा हो ॥ २ ॥
फोड़ दूं पापड़ को पचास लाख झापड़ में,
पानी में आग कहो भड़ाभड़ भड़क जाय।
सुनके हुंकार मेरी जिन्दा की तो कहै कौन ?
मुर्दा शृगाल कहो फड़ाफड़ फड़क जाय ॥
भिल्ली से शूरबीरों की मरोड़दें मूछें हम,
चूहों का कलेजा भी धड़ाधड़ धड़क जाय।
ताल भी दें ठोंक तो पिनाक अभी शंकर का,
टूक टूक होकर तड़ातड़ तड़क जाय ॥ ३ ॥

रावण—

कवित्त

सो रहा था अचानक मैं आज पड़ा लंका में,
स्वप्न में देखा तो स्वयम्बर दृष्टि आया है।
चौंक के चला ज्योंही क्रूरों की करतूत देखी,
तोड़ने को पिनाक भुजा फड़फड़ाया है ॥

देख के कमान यहाँ ध्यान हुआ शंकर का,
क्रोध हुआ खैर उसे माफ फरमाया है।
ऐहो बन्दीजन ! शीघ्र जाके कहो विदेह से,
भेजदें जानकी दशभाल ने बुलाया है॥

जनक— दोहा

स्वागत है ! लंकापते ! बैठो बीच समाज।
महा महोत्सव का दिवस, धनुषयज्ञ है आज॥ १॥
आज्ञा दी त्रिपुरारि ने, जो खींचै शिव चाप।
सीता पति होगा वही, पूर्ण करो प्रण आप॥ २॥

रावण— सवैया

यदि बात यही है महेश की तो, मिथिलेश ! नहीं मन में घबड़ाओ।
दशकंठ ने चापको तोड़ दिया, इस हर्ष का डंका अभी बजवाओ॥
मुझे जाना है शीघ्र न देर करो, जयमाल गले में तुरन्त डलाओ।
हरेकृष्ण ! स्वयम्वर पूर्ण हुआ, सब लोग उठो अपने घर जाओ॥

बाणासुर— कवित्त

बोल उठा बात जैसी जानकी के विषय में,
बात यदि वैसी अब ध्यान में भी लायेगा।
जानकी न प्यारी होगी जानकी तुम्हारी किन्तु,
जानकी का तेज तुझे जान से मिटायेगा॥
स्वप्न मत देख, यहाँ लंका नहीं, मिथिला है,
बक गया जैसा अब बकने न पायेगा।
देख भी न सकता तब तक तू जानकी को,
जब तक न पहिले चाप को चढ़ायेगा॥

रावण— सवैया

अरे ! बीच में कूद पड़ा तू कहाँ ? रस-रंग में भंग मचाने लगा।
कुछ सोचा विचारा नहीं मनमें, मुझे देर में देर लगाने लगा॥

जरा होश में आके बता मुझ से, नहीं दूंगा मैं ठौर ठिकाने लगा।
दशशीस का नाम सुना क्या नहीं? बकवाद वृथा जो बढ़ाने लगा॥

बाणासुर— कवित्त

एक दशशीस तो पाताल गयो जीतन को,
तहाँ मेरे पिता ने पकरि के बँधायो है।
एक दशशीस सहस्रबाहु ने बाँधो खूब,
ताहि पुलस्त्य मुनिने आय के छुड़ायो है॥
एक दशशीस को कहत मोहि लागै लाज,
कहैं सब लोग बालि काँख में दबायो है।
एते सुने दशशीस ताबे अति शंका मोहिं,
कौन दशशीस आजु रंग भूमि आयो है?

रावण— कवित्त

जाने अभिमान सुरराज को नवाय दीन,
जाने गिरराज को भुजान पै उठायो है।
जाने देवतान वृन्द बन्दि माँहि डारि दीन,
जाने हेम लंक से कुबेर को भगायो है॥
जाने सिर काटि काटि शंभु पै चढ़ाय दीन,
जाने युद्ध में प्रचारि कालजीति लायो है।
जाने ऋषि दण्ड लोन चंद सूर्य कैद कीन,
तौन दशशीस आज रंगभूमि आयो है॥ १॥

चंचला सी चमकती चमाचम चन्द्रहास,
चित्त में चमकाती चाँदनी मुसकान की।
पी गई जहर भी जहर के बुझाने पर,
अनुगामिनी है मेरे गुरु भगवान की॥
पल में रसातल तलातल को जाती बेध,
पल ही में खबर लेती है आसमान की।

देखी न खून से खेलती रणाङ्गण में तो क्या ?
सुनी भी प्रशंसा नहीं रावणी कृपान की ? २ ॥

बाणासुर— कवित्त

तर्कस से खींचते ही खींच देता वंश चित्र,
भरता उड़ान बुद्धि हरता कृपाण की ।
सर सर करते ही समर हो जाता सर,
डूबते घमण्डी बात कहता प्रमाण की ॥
पी पी के रुधिर भी न तृप्त हुआ भूतल में,
पड़ी है आफत अपने अपने प्राण की ।
भूल के हरेकृष्ण ! कृपाण की न आती याद,
याद यदि होती तुझे बाणासुरी बाण की ॥

रावण— कवित्त

देखो बलवान कुम्भकर्ण सा हमारा भ्रात,
जिसको न हुई कभी स्वप्न में भी शंका है ।
इन्द्र को जीत कर प्रसिद्ध हुआ इन्द्रजीत,
मेघनाद ऐसा रणधीर पुत्र बङ्का है ॥
देव दिगपाल लोकपाल सभी काँप रहे,
बज रहा तीनों लोक मध्य मेरा डंका है ।
कञ्चन बरसता है प्रजा के घर घर में,
स्वर्ग से भी श्रेष्ट आज स्वर्णमयी लंका है ॥

बाणासुर— कवित्त

पूर्णब्रह्म सृष्टिकर्त्ता स्वयं परमेश्वर ने,
हिरण्याक्ष के लिये वाराह रूप धारा है ।
भक्त प्रहलाद हेतु बनना नृसिंह पड़ा,
विरोचन से हैरान इन्द्र भी विचारा है ॥

देकर के दान तीनों लोक विष्णु बामन को,
देखलो पिता मेरा पाताल में सिधारा है ।
सुना होगा मेरा भी प्रताप सुन लेना अभी,
जन्म हुआ क्यों कि उसी वंश में हमारा है ॥

रावण — कवित

देवता वरुण स्वयं करवाते स्नान मुझे,
दावती चरण स्वयं लक्ष्मी और काली हैं ।
भोजन बनाते स्वयं अग्निदेव मेरे लिये,
नन्दन को फूंक स्वयं इन्द्र बने माली हैं ॥
वायु स्वयं हरेकृष्ण ! करता त्रिविध वायु,
चन्द्रमा और सूर्य सहते नित्य गाली हैं ।
तेंतीस करोड़ देव रहते सदा सेवा में,
देखलो जाकर स्वयं स्वर्ग पड़े खाली हैं ॥ १ ॥
काँपो करैं दिगपाल देखि देखि बाहुबल,
पावक पवन नित्य चित्त में डरो करैं ।
जीते हैं गन्धर्व देव महिदेव सिद्ध सुर,
अरे ! देवतान वृन्द बन्दि में सरो करैं ॥
बाँधो काल पाटी में भुजान सों प्रचार जीति,
जो छूटिवे की नित्य प्रार्थना ही करो करैं ।
बावरो भयो तू कहा ? जानत न मोंहि बाण !
मेरे चित्त बीच ज्वाला क्रोध को बरो करैं ॥ २ ॥

बाणासुर— सवैया

बस जान लिया मत ज्यादा बको, तुम वास्तव में हो बड़े अभिमानी ।
सब लोग सभा के प्रसन्न हुये, जब आपने कीर्ति अनंत बखानी ॥
भय लज्जा को छोड़ सुना सब को, हम पूछते बात जो एक पुरानी ।
हरेकृष्ण ! हमें भी बतादो जरा, वह बालि की काँख की कैसी कहानी ?

रावण—　　　　कबित्त

देख जरा मुझे लगता हूँ बालि का बाबा सा
　भुनभुना नहीं हूँ जो काँख में दबाया है।
हुआ था युद्ध मेरा अवश्य उस बन्दर से,
　मैंने ही किन्तु उसे मारकर भगाया है॥
याद रहे बाण! ऐसा कहीं कह देना मत,
　तुझे दैत्य-वंश में जानकर बचाया है।
बताओ हरेकृष्ण! क्या बाकी रहा वीरता में,
　कैलाश को मैंने जब गेंद सा उठाया है॥

बाणासुर—　　　　कबित्त

मानता हूँ मैं तूने उठा लिया कैलाश किन्तु,
　फौरन ही पागया फल भी तो करारा है।
दाब दिया शम्भु ने तभी पैर के अँगूठे से,
　मरा मैं मरा कहकर तब पुकारा है॥
कैलाश सरीखे शैल लाखों जिस पृथ्वी पर,
　मैंने शिर पर उसे फूल तुल्य धारा है।
चाहे पूछलो हरेकृष्ण! जा जा के पाताल में,
　सौ सौ बार मैंने दिया शेष को सहारा है॥

रावण—　　　　कवित्त

कहा था दस दिन के भूखे एक राक्षस ने,
　जिस वक्त मैंने की थी लंका से तयारी आज।
खाऊँगा सभा के राजाओं को साथ चलके मैं,
　बनाऊँगा बाणासुर को भी तरकारी आज॥
रोक दिया मैंने किन्तु मेरी भी कृपाण यहाँ,
　छोड़ती केवल तुझे निर्बल निहारी आज।

आया नहीं चक्रदत्त शीघ्र ही बचा के प्राण,
भाग जाओ बाण! बड़ो भाग्य है तुम्हारी आज॥

बाणासुर— कवित्त

चारमुख चतुरानन की न चरचा करो,
पंचमुख पंचानन पार नहीं पावेंगे।
षण्मुख षडानन की भी न पूछो बात कोई,
सहस्रमुख सहस्रानन भी लजायेंगे॥
भाट के समान एक साथ ही अनेक बार,
दशमुख जब दशानन के चिल्लावेंगे।
करते हैं प्रयाण हम व्यर्थ बकवादी से,
एक मुख से बोलो कहाँ तक बतावेंगे?

रावण— सवैया

कुछ अज्ञ नहीं यह रावण भी, सब शास्त्र औ वेद पुराण का ज्ञाता।
यह चाप चढ़ा मैं अभी सकता, हरेकृष्ण! नहीं मन में घबराता॥
जब जाता था शंकर पूजन को, तब रोज पिनाक रहा मैं उठाता।
पर टूट न जाय कहीं इससे, अरमान लिये अपने घर जाता॥१॥

दोहा

किन्तु जानकी जब कहीं, मुझे पड़ेगी देख।
हर लूँगा निश्चय वहीं, अटल समझना लेख॥ २ ॥

जनक—(धनुष न उठाने पर) कवित्त

धरणी माता से उत्पन्न हुई थी सीता सुना
धरणी में मिलाके समस्त सुख सो गई।
कैसी है विवशता विधाता की विचित्र-गति,
वेदना विशाल व्याकुलता बीज बो गई॥

अजगव अखण्ड ने गुमान खण्डन किया,
बड़े बड़े शक्ति शालियों की शक्ति खोगई।
आओ सब राजपुत्र ! जान लिया मैंने आज,
वीर-हीन बिलकुल वसुन्धरा हो गई॥

परशुराम—(महेन्द्राचलपर) सवैया

रव गूँज गया नभ मण्डल में, घनघोर रसातल फूट गया।
वन में मृग सिंह दहाड़ उठे, जगतीतल का सुख लूट गया॥
बस जान लिया मिथिलापुर में, गुरु चाप तड़ातड़ टूट गया।
हरेकृष्ण !चलो भृगुनन्दन का, अब ध्यान समाधि से छूट गया॥

परशुराम—(जनक के प्रति) सवैया

प्रतिपाल प्रजा को सदैव करो, मन धर्म-विवेक वितान तने रहो।
निज शत्रुन शासि धरातल पै, तिहुं लोक में कीरति पुंज घने रहो॥
सनमान समेत सदा सब के, हरेकृष्ण ! सनेह सुधासों सने रहो।
परमेश्वर प्रेम-पयोनिधि में, चिर काल विदेह ! [illegible] बने रहो॥

परशुराम—(सीता के प्रति) कवित्त

कच्छप पै शेष जौ लौं शेष पर भूमि जौ लौं,
भूमि पर सिंधु जौलौं वारिसों घनो रहै।
सिंधु पर बारि जौ लौं वारि पर वायु जौ लौं,
वायु पर व्योम जौलौं नेमसों तनो रहै॥
व्योम पर सूर्य जौ लौं सूर्य पर स्वर्ग जौ लौं,
स्वर्ग पर इन्द्र जौ लौं हर्ष सों सनो रहै।
ऐरी जनक किशोरी ! तौ लौं 'हरेकृष्ण' कहै,
तेरो सुहाग सिर में संदूर बनो रहै॥

परशुराम—(विश्वामित्र के प्रति) कवित्त

रूप को निधान चन्द सूर्य सों उदोतमान,
चंचल तिरीछे नैन भृकुटी चलावै है।
लागि है समाधि जानौं ऐसो कछु लागै मोंहि,
साँवरो सलोनो मुख मोरि मुसकावै है॥
नाहीं मन अनुराग-वश थामे थमै आज,
मेरो चित्त योग ते वियोग में लगावै है।
ऐहो हरेकृष्ण! धर्म धीरज न धारो जाय,
कौन को कुमार वेगि कौशिक! बतावै है॥

परशुराम—(टूटा धनुष देखकर) कबित्त

आज विधि मेरे खण्ड खण्ड क्यों न होते हाथ?
अजगव अखण्ड के तीन खण्ड गहते।
टूक टूक होगया कुठार क्यों न पहिले ये,
फूट फूट वारिधि विशाल क्यों न वहते?
ऐहो हरेकृष्ण! धरा क्यों न धसक जाती ये,
कट क्यों न जाती मेरी जिह्वा वात कहते?
शिव शिव शोक शिव धनुष की ऐसी दशा,
जीवित जगत में जामदग्न्य के रहते॥

परशुराम— कबित्त

शिव शिव शोक शिवद्रोही कौन पैदा हुआ,
किसने बुलाया आज मृत्यु को डगर में?
ऊर्ध्वविन्दु बाल ब्रह्मचारी वीर ब्राह्मण से,
निर्भय निशंक हुआ कौन विश्वभर में?
बीते अनेक वर्ष निःक्षत्र भूमि मण्डल में,
देखा न कोई लाल क्षत्रिय का समर में।

देखो हरेकृष्ण ! आज कैसी होनहार होय ?
  रेणुका-कुमार ने कुठार लिया कर में ॥

लक्ष्मण— कवित्त

भूल गये भृगुनाथ क्या भीष्म ब्रह्मचारी को,
  ब्याह का निदेश जब आपने सुनाया था।
माना था न कहना तुरन्त तीव्र क्रोधित हो,
  युद्ध घनघोर पितामह ने रचाया था॥
आपको न केवल भगाया था रणाङ्गण से,
  किन्तु हरेकृष्ण ! जयपत्र भी लिखाया था।
सोई तुम दिखाते कुठार हमें बार बार,
  कठिन कुठार वहाँ क्यों नहीं उठाया था ?

परशुराम— कवित्त

ज्ञात नहीं तुमको क्या? भीष्म था हमारा शिष्य,
  बरसों तपोबन में उसको पढ़ाया था।
आजीवन ब्रह्मचर्य-व्रत की परीक्षा-हेतु,
  मैंने स्वयं उसे रण-भूमि में बुलाया था॥
'हरेकृष्ण' पुरस्कार में प्रमाण पत्र लिखा,
  हृदय में वात्सल्य रस उमड़ आया था।
सच्चा गुरु-भक्त पितृ-भक्त कृपापात्र जान,
  कठिन कुठार नहीं हमने उठाया था॥

लक्ष्मण— कवित्त

तुम हूँ मुनीश ! नेक उर में विचारि देखो,
  क्षत्रिय समान कौन योधा बलवारो है।
नाहीं अभिमान कछू सत्य ही बखानत हौं,
  पान जति लड़िबो स्वभाव ही हमारो है॥

कहत संकोच लगै पूर्व कथा याद करी,
 क्षत्रिय प्रताप से ही फरसा सुधारो है।
ऋषिवर ऋचीक जो दीन्ही हव्य क्षत्रिय की,
 जन्म हरेकृष्ण ! भयो ताही सों तुम्हारो है ॥

राम—(सीता-वस्त्र देखकर) सवैया

तुम हूँ पट हौ हम हूँ पति हैं, पट औ पति एक समान सदाई।
सुख में दोउ साथ रहे सिय के, दुख देखि चले दोउ संग बिहाई॥
पर देर लौं साथ रहे तुम तौ, हमसों तौ तऊ तुम धन्य हौ भाई।
अब बारहिं बार यही बिनती, कहँ हाय ! सिया पट ! देहु बताई ?

राम—(मूर्च्छित लक्ष्मण को देख कर)

(१)

दिये आज धोखा निशाहू चली है।
 नहीं दोष तेरो समै ही बली है॥
हनूमान भूले करी देर ऐसी।
 कहाँ हाय जाऊँ करूँ हाय कैसी ?

(२)

अयोध्या बिसारे पिता शोक धारे।
 बनों पर्वतों में फिरे मारे मारे॥
हरी नारि सीता बना बंधु-घाती।
 नहीं तो भी मेरी फटी हाय छाती॥

(३)

सुमित्रा ने सौंपा हमें हाथ तेरो।
 नहीं किन्तु मैंने दियो साथ तेरो॥
महा धैर्यधारी सदा से दुखारी।
 बधू उर्मिला क्या कहेगी बिचारी ?

(४)

अभी शत्रु लंका का मारा नहीं है ।
हमें कष्ट से भी उबारा नहीं है ।
नहीं ध्यान मेरा जरा ला रहे हो ।
अकस्मात छोड़े कहाँ जा रहे हो ?

(५)

अरुण नेत्र ऊषा ने देखो दिखाये ।
न आये हनुमान अब तक न आये ॥
चलो देह मैं भी चिता में जलाऊँ ।
तुम्हें स्वर्ग में ही हृदय से लगाऊँ ॥

राम–(शिव प्रार्थना) दोहा

हे भगवन् करुणानिधे ! आशु तोष गिरिजेश ।
दास जानि रक्षा करो, अशरण शरण महेश ॥ १ ॥
माया में काया हुई, मेरी प्रभु बरबाद ।
सोने में भी आपकी, मुझे न आई याद ॥ २ ॥
परो नाथ ! संकट सघन, चित्त रह्यो घबराय ।
ऐसे अवसर में भला, तुमबिन कौन सहाय ? ३ ॥
आशा देवी कह रहीं, करि हौ कृपा कृपाल ।
पाहि पाहि रक्षा करो, हरो दुःख बिकराल ॥ ४ ॥

❀ नव-रस ❀

—:❀:—

कविता—

दोहा

कवि तो करता काव्य है, अनुभव करे जहान ।
पिता न पाता पति यथा, पाता योवन दान ॥ १ ॥
कविता अपनी कान्ति पै, कब हूँ लेय लुभाय ।
शब्द ढुँढ़ावै ध्यान सों, प्रभु को देय भुलाय ॥ २ ॥
मान म्यान में मत कहीं, रख लेना बेकार ।
कविता बन्धन-वेधनी, प्रभु प्रदत्त तलवार ॥ ३ ॥

सवैया

जगदीश ! यही बिनती तुमसे, यह निर्धन जन्म बिताना पड़े ।
सुख शब्द मिले सुनने को नहीं, यम लोक भी अन्त में जाना पड़े ॥
हरेकृष्ण ! भले इस भूतल में, दुख घोर से घोर उठाना पड़े ।
रसहीन नरों में परन्तु मुझे, कविता न कदापि सुनाना पड़े ॥

कवित्त

विकट से विकट संकट के समय में भी,
सुना के रसीली तान हर्ष भर देती तू ।
रुष्ट यदि हुई तो स्वयम्भू क्यों न सन्मुख हों ?
गौरव गुमान सभी दूर धर देती तू ॥
मिलती सदैव हमें नये रूप योवन में,
शीघ्र हरेकृष्ण ! दुःख दैन्य दर देती तू ।
धन्य देवि ! कविते ! जिस पर हो तेरी कृपा,
सदा के लिये उसे अमर कर देती तू ॥ १

राज बल धन बल से न दब सकता मैं,
रहता हूँ निशङ्क नहीं रंच भय पाता हूँ।
सुख में तो सुखी सब रहते ही हैं परन्तु,
कठिन दुःख में भी महा मोद मैं मनाता हूँ॥
फूल सा रखता अनुकूल मित्र-मण्डल मैं,
प्रतिकूल शत्रु मण्डल धूल सा उड़ाता हूँ।
जिसे चाहे ऊँचा नाम बना दूं क्षण भर में,
कविता के बल से हरेकृष्ण! मैं विधाता हूँ॥ २॥

१—शृंगार

प्रेम हवा— सवैया

इतना अभिमान न मित्र! करो, इस माया से व्याप्त चराचर है।
वह पुष्प कहाँ वन नन्दन में, नहीं प्रेम हवा से कँपा जो थराथर है॥
नहीं हार किसी के गले का बना, यह तो कुछ सत्य बराबर है।
पर पत्तियों ने पर मारा नहीं, इतना तो असत्य सरासर है॥

अज्ञात यौवना— कवित्त

प्रेम का प्रकाश अभी फैला नहीं मानस में,
उर में है ज्योति अनुराग की जगी नहीं।
आयु है किशोर इसी हेतु इस दुनियाँ में,
मति भी तुम्हारी प्रेम-रस में पगी नहीं॥
रंगत शबाब की न आई अभी पूर्णतया,
इसी हेतु शोभा किसी ठग ने ठगी नहीं।
भूल जाती वरना सभी शान भरी बातें ये,
कुशल यही है कहीं लगन लगी नहीं॥

मान — सवैया

व्यर्थ में कोई गुमान करे, कभी काम किसी का नहीं रुकता है।
घोर से घोर विपत्ति पड़े, पर सिंह का भाल नहीं झुकता है॥
शब्द नहीं निकला अब तो, बस प्रेम का प्याला यहीं चुकता है।
कान से मित्र! सुना क्या नहीं? कि खुदा से जुदा करता नुकता है॥

क्लीव मन — सवैया

भ्रम देख मनोज हुआ था मुझे, मुनि ने जब था मन क्लीव बताया।
हरकृष्ण! परीक्षा के हेतु उसे, रमणी के समीप सशंक पठाया॥
पर हाय! अभी तक आया नहीं, वह योवन देख वहीं ललचाया।
अब जाकर और पढ़ें किससे? जब पाणिनि ने भी अशुद्ध पढ़ाया॥

आकर्षण — दोहा

योवन पर उलझा नहीं, कौन पुरुष शिरमौर?
खिले कमल पर शीघ्र ही, कौन न गिरता भौंर?

२—वीर

स्वाभिमान — कवित

भीष्म के समान कौन वीर ब्रह्मचारी हुआ,
द्रोण के समान कहाँ कौन गुरु ज्ञानी था?
अर्जुन सा विजेता और नेता श्रीकृष्ण जैसा,
कर्ण के समान कहाँ अद्वितीय दानी था?
हकीकत में शेरदिल था हकीकतराय,
धर्म वीर शिवा सम स्वदेशाभिमानी था।
धन्य था वह समय सुखद हमारा जब,
बच्चा बच्चा देश का प्रताप सा गुमानी था॥

दृढ़ता—— हरिगीतिका

प्रारम्भ करके कार्य जो नर अन्त तक छोड़े नहीं।
मर जाय पर कठिनाइयों से मुख कभी मोड़े नहीं॥
उस वीर का ही विश्व में वस अमर रहता नाम है।
यों तो अनेकों जन्मते मरते सदा पशु ग्राम हैं॥

हुंकार—— दोहा

वीरों की हुंकार से. गूँज उठे आकाश।
पैदा हों फिर देश में, राणा, शिबा. सुभाष॥

निश्चय—— कवित्त

खंजर यदि उठायेंगे आप तो नीचे हम,
हँसते हुये निज गरदन झुकायेंगे।
मृत्यु का आलिङ्गन करके शीघ्र ईश्वर से,
जालिमों का जुल्म जाके स्वर्ग में सुनायेंगे॥
स्वर्ग सुख छोड़ कर आयेंगे तुरन्त लौट,
लगाम वैसी ही फिर देश से लगायेंगे।
जियेंगे मरेंगे हरेकृष्ण! रोज सौ सौ बार,
भारत स्वतन्त्र किन्तु निश्चय बनायेंगे॥

वीर-व्रत—— कवित्त

जागेंगे सिंह जिस समय इस भारत के,
गीदड़ समाज सब देश से निकारेंगे।
कौनसा बड़ा भय है कमान तीर तोपों का?
मृत्यु के सामने हम हिम्मत न हारेंगे॥
कृष्णचन्द्र कल्कि बन आयेंगे तुरन्त यहाँ,
हरेकृष्ण! हरेकृष्ण! कह जो पुकारेंगे।
आन की ही आन में स्वतन्त्र कर लेंगे देश,
भारत के वीर जब वीर व्रत धारेंगे॥

जागृति— गायन

हमें धर्म अब तो बचाना पड़ेगा।
तथा तेज अपना दिखाना पड़ेगा॥
बढ़े आततायी अनेकों यहाँ पर।
उन्हें खोद जड़ से मिटाना पड़ेगा॥
जिसे हाथ ले चण्डी ने चण्ड मारा।
वही खड्ग फिर से उठाना पड़ेगा॥
दुखी द्रोपदी सी लगा टेर किम्वा।
पुनः विश्वपति को बुलाना पड़ेगा॥

उद्बोधन— कवित्त

जाग पड़ो धर्मवीर योधा युद्ध कानन में,
सिंह के तुल्य एक बार फिर दहाड़ दो।
मेट दो धरातल से धर्म-द्रोहियों का नाम,
कायर कपूतों का कलेजा बढ़ फाड़ दो॥
स्वप्न में भी सर उठाने का न साहस करें,
ऐसा इन दुश्मनों को जड़ से उखाड़ दो।
हरेकृष्ण! धरा पर धर्म की जमा दो धाक,
धर्म-प्राण भारत में धर्म ध्वजा गाड़ दो॥

३—करुणा

कपिला-क्रन्दन— सवैया

रोज व्यतीत सदा करतीं, अति प्रीति प्रतीति सों घास चबाई।
देतीं तुम्हें नित मोद गहे, घृत दूध दही नवनीत मलाई॥
कौन कहो हरेकृष्ण! नहीं, उपकार करै मम वत्सहु भाई!
हाय! कहा हम भूल करी, जेहि कारण काटत मोंहि कसाई॥१॥

कहाँ कृष्ण दिलीप सपूत मेरे, बिना तेरे अनाथ मैं हो रही हूँ।
स्वयमेव विचार करो कितना, उपकार का बीज मैं बो रही हूँ॥
फिर भी मुख रक्त से धो करके, तलवार से प्राण भी खो रही हूँ।
हरेकृष्ण! कहा कुछ जाता नहीं, अपनी तकदीर को रो रही हूँ॥२॥

४—हास्य

भ्रम— सवैया

बम शब्द सुना बँगले में अचानक फोन किया झट साहब डोला।
कपतान ने आके तलाशी भी ली कुटिया सब देखके झोला टटोला॥
जब शंकर मूर्ति उठाने चला तब साधु जरा मुसका कर बोला।
यह लिंग है भोला दिगम्बर का हरेकृष्ण! नहीं बम का यह गोला॥

गृहस्थ-दुर्दशा— सवैया

एक समै हरि लोक गये, मन मध्य महान महेश दुखारी।
देख तुरन्त प्रणाम कियो, अरु आसन उच्च दियो सुखकारी॥
षोडश भांतिं सों पूजन कै, फिर मंगल प्रश्न कियो असुरारी।
उत्तर में 'हरेकृष्ण' कहैं, यहि भाँति कह्यो हरिसों त्रिपुरारी॥१॥

मंगल पूछत आप कहा, सब जानत हौ तुम मंगल कारी।
अंग भुजंग रहैं लपटे, क्षण मात्र तजैं नहिं देह हमारी॥
पुत्र गणेश के वाहन को, नित खाम चहैं खल ते दुखकारी।
ज्येष्ठ कुमार को वाहन पै, तिनको हु रहै नित प्राण प्रहारी॥२॥

गौरी को केहरि बैल तथा, गज जानि गणेश को भक्षक भारी।
शीस शिखी शशि भस्म करै, उठि प्रात लड़ैं गिरि जन्हु कुमारी॥
आपस में गण वृन्द करैं, निशिवासर युद्ध अशान्ति प्रचारी।
देख स्वगेह चरित्र हरे! हमने निज मृत्यु की युक्ति विचारी॥३॥

जाय हिमालय बास कियो, हिम ने न वहाँ पै शरीर गलायो।
घोर हलाहल पान कियो, नहिं भाग्य ने तापर जोर जनायो॥
भाँग धतूर तौ नित्य पियें, अब लौं पर काल कराल न आयो।
जैसो है मंगल मेरे यहाँ, हम तैसो तुम्हैं सब गाय सुनायो॥४॥

शिव बैन विचित्र सुने जब यों, तब विष्णु कह्यो सुनिये त्रिपुरारी।
लघु दुःख में व्याकुल आप भये, मम दुःख सुनौ पहिले अति भारी॥
तव अंग भुजंग रहैं लघु ही, यह सेज लखौ भुजगेश हमारी।
यदि वाहन मोर उतै तौ इतै, हरेकृष्ण! खगेश महा अहिहारी॥५॥
तिहुं लोक की बात न ध्यान धरै, सुत काम अजेय है एक हमारो।
अति चंचल एक रमा रमणी, घर माँहि सदैव रहै जलधारो॥
सरितेश सुता लखि शारद को, नित निन्दति शंभु हिये निरधारो।
फिर नेक विचार करौ मन में, मम दुःख बड़ो कि बड़ो है तुम्हारो॥६॥

लक्ष्मीपति— कवित्त

लूटे बिना दीनों को न कोई कभी होता धनी,
सिन्धु को लूट विष्णु लक्ष्मीपति कहाते हैं।
ठगी करने से भी धनी का न घटता मान,
बलि को छल के कीर्ति लक्ष्मीपति पाते हैं॥
नंगों को छोड़ किसी और से न दबते धनी,
रुद्र को ही मस्तक लक्ष्मीपति झुकाते हैं।
सरस्वती-पति का हम भी तो न लेते नाम,
लच्छेदार स्तुति लक्ष्मीपति की बनाते हैं॥

उपालम्भ— कवित्त

शक्ति यदि होती तुम में कुछ निवारण की,
कवियों की तो कटूक्तियाँ नित्य सहते क्यों?
पीड़ा यदि पीड़ितों की दूर कर सकते
क्षीर-सिंधु में चुपचाप बैठ रहते क्यों?

तुम्हीं यदि सुख पूर्वक होते नाथ ! तो फिर,
करुणा के अथाह सिंधु बीच बहते क्यों ?
धनिक होते तो कहते सब धनिक बन्धु,
सोचो तो दीन तुम्हें दीन बन्धु कहते क्यों ?

५-शान्त

सरस्वती-वन्दना— कवित्त

मस्तक पै मुकट औ पुस्तक लिये हाथों में,
जिसकी सदैव शुभ्र हंस की सवारी है ।
बार बार बलिहारी पूज्य पद्मासन पर,
आहा ! मधुर बीणा की क्या ही ध्वनि प्यारी है ।।
जिसकी समता की न कोई शक्ति भूतल में,
देवलोक चरण कमलों का पुजारी है ।
कहते हरेकृष्ण ! सर्व प्रथम बन्दनीय,
वही इष्ट देवी श्री सरस्वती हमारी है ।।

गायन

धरते हैं हम ध्यान, सरस्वती माता का ।
वीणा मधुर बजाने वाली । प्रेम-सुधा सरसाने वाली ।
भक्तों को हरषाने वाली । विद्या बुद्धि निधान ।। सर० ।।
एक हाथ में पुस्तक राजै । एक हाथ में कमल विराजै ।
रूप तेज अति ही छवि छाजै । गाते हम गुण गान ।। सर० ।।
सादर तुमको शीस झुकाऊँ । बार बार चरणन बलिजाऊँ ।
यह बरदान दयाकर पाऊँ । अभिनय रचूँ महान ।। सर० ।।

सनातनधर्म— कवित्त

आरम्भ में ही. हिरण्यकशिपु मिटाता रहा,
हार गया पर जरा मिटा नहीं पाया है ।

त्रेता में भी इसे जड़ से खोद के मिटाने में,
रावण ने बल बीस भुजा का लगाया है ॥
द्वापर में भी दुष्टों ने खूब ही उपाय किये,
कंस ने तो भला ज्ञान तोड़ के मिटाया है।
मिल गये स्वयं मिट्टी में मिटाने वाले सब,
सनातन धर्म पर यों ही चला आया है ॥

ब्रह्मचर्य — कवित्त

जिसने न ध्यान किया स्वप्न में भी रमणी का,
मित्रों में न बैठ के योवन-गुण गाया है।
कभी भी कुदृष्टि से न देखा किसी युवती को,
एकान्त में नहीं हँस हँस के बताया है ॥
ऐसा 'हरेकृष्ण' नहीं भूल के विचार किया,
और कभी चित्त से न निश्चय कराया है।
छोड़े रहा जो सर्वथा केलि क्रिया निवृत्ति को,
विश्व में वीर ब्रह्मचारी वह कहाया है ॥ १ ॥

पड़ते लड़कपन से अनेक व्यसनों में,
रखा के बाल फैशन वेश्या सा बनाते हो।
प्रकृति के प्रतिकूल हा ! हा ! किन कुकृत्यों से,
वीर्य बल पराक्रम पानी सा बहाते हो ॥
नाटक नौटंकी के तमाशे देख दुनियाँ में,
हा शोक ! नाम ऋषि मुनियों का डुबाते हो।
अब भी 'हरेकृष्ण' की शिक्षा मान जावो चेत,
नहीं तो समझ लो रसातल को जाते हो ॥ २ ॥

कहते हो उन्नति हो उन्नति हो किन्तु कभी,
अवनति-कारण पर भी ध्यान लाते हो।

उन्नति का मूल जो ब्रह्मचर्य्य उसको तुम,
कहो तो कितनी कुरीतियों से मिटाते हो ॥
सुनते उपदेश इस कान से सभाओं में,
किन्तु घर जाके उस कान से भगाते हो ।
खालो शपथ अभी चेत जाओ प्यारे युवक !
कवि की कलम कलंकित क्यों कराते हो ? ३ ॥

नीति—

दोहा

पहिले सहता क्लेश जो, होता वह विद्वान् ।
कंचन तप कर अग्नि में, पाता कान्ति महान् ॥ १ ॥

उच्च विषय उमदेश से, समझ न सकता क्षुद्र ।
तुच्छ शंख में क्या कहीं, भरता अगम समुद्र ? २ ॥

विद्वद्वर ही भूलता, भूले नहीं गँवार ।
गिरे कहीं पैदल भला, गिरता सदा सवार ॥ ३ ॥

अपने मुख गुण ज्ञान से, मिले न सुख स्वच्छन्द ।
कुच मर्दन निज हाथ से, यथा न दे आनन्द ॥ ४ ॥

द्रव्य देख कर मूर्ख का, विद्या तजो न यार ।
सती न होती पुंश्चली, गणिका-रत्न निहार ॥ ५ ॥

तुल्य दृष्टि से देखते, सज्जन सब संसार ।
वारिद क्या करते कभी, पर्वत सिंधु विचार ? ६

आरम्भ होता जिस किसी का, अंत भी होता अवश्य ।
कम्पन शिशिर के बाद शीघ्र, वसंत भी होता अवश्य ॥१

अन्तस्तल में छिपा हुआ, आनन्दों का भण्डार स्वयम् ।
तुम इधर उधर क्यों दौड़ रहे? हो तुम्हीं स्वर्ग आगार स्वयम् ॥२

परिवर्त्तन— सवैया

पयसिंधु में पानी न होता कहीं, तथा भाव हमें बनियाँ न बताता।
तरु तार जो उच्च दिखाते नहीं, बल वालों के बीच न यों बल खाता॥
तथा दीप में होता सनेह न तो, इन शब्दों को कोष में कौन बचाता?
कुछ ध्यान हमारे में आती नहीं, अहो! लीला तुम्हारी विचित्र विधाता॥

मानव-चर्म— कवित्त

मृगों का चर्म देखो देकर के कस्तूरी तुम्हें,
मुनियों का शुद्ध मृगछाला भी बनायेगा।
बैल भैंसों का चर्म बनकर के पद त्राण,
चलने में मार्ग तुम्हें काँटों से बचायेगा॥
पुण्यात्मा पक्षियों का भी तो परोपकारी चर्म,
बहुत से भूखों को भोजन ही खिलायेगा।
ऐरे नर! नीच किन्तु तेरा चर्म भूतल में,
छोड़कर धर्म किसी कर्म में न आयेगा॥

———

६—अद्भुत

शिव-बन्दना— सवैया

तब पुत्र गणेश गजानन हैं, गिरिराज सुता तब प्राण पियारी।
शिर ऊपर ज्वाल हुताशन की, सब अंग भुजंग भयंकर भारी॥
पशु बाहन बैल अजान महा, तेहि हेतु कहैं हरेकृष्ण! विचारी।
शिव! नैन जो बन्द करौ तुम हूँ, तौ सुनै विनती फिर कौन हमारी?

७—वात्सल्य

शिशु-जीवन— सवैया

हँस देना बिना ही प्रयोजन के, कभी रोना ही रोना विचारा कहाँ ?
वह माता की गोद कहाँ जिसमें, बहती नित अमृत धारा कहाँ ?
रहता दिन रात जो साथ ही था, वह कन्दुक प्राण पियारा कहाँ ?
अरे यौवन! मूढ़! बता तो सही, शिशु जीवन दिव्य हमारा कहाँ ?

———

८—रौद्र

आचार्य-प्रतिज्ञा— कवित्त

सहूँगा न बातें छोकड़ा ! तुम्हारी मौन रहो,
कहूँगा न मिथ्या जरा सत्य ही बताऊँगा ।
गहूँगा न शस्त्र कैसे बाक्य तुम्हें दे चुका मैं,
रहूँगा न शान्त चक्रव्यूह ही रचाऊँगा ॥
डरूँगा न काल ब्रह्मा विष्णु या महेश से भी,
धरूँगा न धैर्य प्रभा भानु की छिपाऊँगा ।
हरूँगा न प्राण किसी वीर के तो आज से ही,
करूँगा न युद्ध द्रोणाचार्य ना कहाऊँगा ॥

———

९—सख्य

प्रेम-पत्र— दोहा

दशशिर रघुवर आदि लै, शीश कान को अन्त ।
मित्र ! शीघ्र ही दीजिये, प्रियबर पावन सन्त ॥ १ ॥

प्रेम लता कोमल महा, निमिष माँहि कुम्हिलाय।
पत्र सुधा सों सींचि के, दीजै वेगि बढ़ाय ॥ २ ॥
निशि दिन हम हर्षित रहैं, तुम्हरे प्रेम अथोर।
मुख मयंक निरखो करैं, प्रेमी बने चकोर ॥ ३ ॥

हरिगीतिका

प्रियवर ! बताते क्यों नहीं अपराध क्या मैंने किया।
प्रतिकूल जिसके आपने बदला हमें यह है दिया॥
हा ! जान पड़ता है नहीं मुझ से हुई क्या भूल है।
जिससे प्रभू का चित हुआ इस दास के प्रतिकूल है॥१॥
बातें तुम्हारी प्रेम को अब वह दुखातीं चित्त को।
हो कर ससैन्य वियोग भी अब लूटता मुद वित्त को॥
हा हा न कोई शक्ति दी। ऐसी मुझे श्री राम ने।
अनुचर हृदय जो खोलकर रखता प्रभो के सामने॥२॥
हे मित्र ! वह दिन याद है जब तुम यहाँ से थे चले।
जाकर लिखूँगा पत्र मैं बोले बचन तुम थे भले।
पर क्या कभी उस रोज से आई तुम्हें मम याद है।
प्रियवर ! तुम्हारे प्रेम का अच्छा मिला यह स्वाद है॥३॥
हा ! प्रेमकर फिर दुःख देना नीति प्रभु की हो गई।
दीवार बालू की अहो अब प्रीति प्रभु की हो गई॥
प्रेमी तुम्हारे प्रेम में हा ! प्रेम श्वासें भर रहा।
निज हाथ दोनों जोड़कर यह प्रार्थना भी कर रहा॥४॥
अपराध सारे पाप अरु कटु बाक्य भाषण पाप सब।
मेरी विनय स्वीकार कर कीजै क्षमा प्रभु आप अब॥
मंजुल लता जो प्रेम की कुछ नाथ है कुम्हिला गई।
वह पत्र जल से सींचकर वस फेरि कर दीजै नई॥५॥

हरिगीतिका

क्या ध्यान रखते हो नहीं ? मुरझा गई वह वाटिका।
यों भूलते कब तक करोगे ? संग्रहीत बराटिका ॥
वेला गई, पर आज तक तव पत्र आया है नहीं।
सच बात है, इस प्रेम ने किसको रुलाया है नहीं ॥१॥

ऐसे तदपि तुम थे नहीं कोमल बड़े लगते रहे।
अनुराग से मम प्रेम पुष्प पराग में पगते रहे ॥
था ऊपरी आदर्श केवल भीतरी कुछ और था।
क्या दुष्ट खीरे की तरह कापट्य ही शिरमौर था ॥२॥

तुमको नहीं इसमें मगर कुछ दोष देना योग्य है।
ज्यों त्यों करें ही चित्त को सन्तोष देना योग्य है ॥
हमने सहे जो कष्ट हैं, उनका बताना व्यर्थ है।
उस प्रेम रूपी मूर्त्ति को रोकर रुलाना व्यर्थ है ॥३॥

प्यारे परम मुख चन्द्र से सन्ताप सारा खींचना।
जल रूप वाक्यों से अहो! उस दुखित चित को सींचना ॥
क्यों भूल प्यारे हो गये ? क्यों मित्र न्यारे हो गये ?
क्यों मित्र न्यारे हो गये ? क्यों भूल प्यारे हो गये ?॥४॥

जाकर लिखेंगे पत्र हम यह वाक्य क्या ही बाण थे।
विकराल काल प्रहार था या वज्र थे पाषाण थे ॥
श्रीमन् ! मगर बतलाइये यह कोप तुमने क्यों किया।
दृढ़ प्रेम को कर चंचला सा लोप तुमने क्यों किया ?॥५॥

कितना तुम्हें हम चाहते यह जानते तुम हो स्वयम्।
तुम भानु हो हम कंज हैं यह मानते तुम हो स्वयम् ॥
मम प्रेम रूपी वाटिका का प्रेम माली कौन है ?
श्रीमान् को ही छोड़ कर के उत्तरोत्तर मौन है ॥६॥

कदली, करौंदा, केतकी, करवीर कलंगा, कामिनी।
नौरङ्ग, चन्दन-चारुता, चम्पा, चमेली, चाँदनी॥
गेंदा गहन, गुलमेंहदी, गुलदाउदी, गुलनार की।
सुकमार सारी सौरभा अम्भोज और अनार की॥७॥

कर दो प्रफुल्लित द्रुम फलित फल बाग मनभाने लगे।
कोकिल चकोरों की मधुर आवाज फिर आने लगे॥
आवे बसन्त बहार भी दुख दूर शीघ्र वियोग हो।
प्रियवर! हमारा आपका फिर प्रेम से संयोग हो॥८॥

जो हो गया वह हो गया, अब खैर जाने दीजिये।
आगे मगर ऐसा समय मत भूल आने दीजिये॥
प्रभु पत्र लिखने में जरा कुछ कष्ट कृपया कीजिये।
पश्चात् पूर्ण प्रसन्नता से शीघ्र उत्तर लीजिये॥९॥

देखो दिवाकर. मेघ से यदि ढक लिये जाते कभी।
प्रिय पङ्कजों के हेतु पर फौरन निकलते वे तभी॥
विश्वास मेरी प्रार्थना यह व्यर्थ जावेगी नहीं।
कोमल करों की पत्रिका वह शीघ्र आवेगी यहीं॥१०॥

* निवेदन *

—:※:—

'वंशी' में निम्न ८ पुस्तकों का संग्रह है:—

(१) शारदाष्टक—में श्रीसरस्वतीदेवी की प्रार्थना है। जो विद्योपार्जन करने वालों के लिये अधिक उपयोगी है।

(२) साधनाष्टक—के ८ श्लोकों में क्रमशः विद्याध्ययन, सहनशीलता, वर्णाश्रम-व्यवस्था, कर्मयोग, संकीर्त्तन, वात्सल्य भाव दास्य भाव और माधुर्य भाव—इन अष्ट साधनों का वर्णन है ।

(३) श्रीकृष्ण-सप्तशती—में सौन्दर्य, आकर्षण और विप्रलम्भ-वर्णन अधिक किया गया है।

(४) वृन्दावन-शतक—वृन्दावन के वर्तमान वातावरण में लिखा गया है।

(५) श्याम-संगीत—में स्फुट गायनों का संकलन है।

(६) श्याम–शतक—में साधन-काल की अनुभूतियों का संग्रह है।

(७) रामलीला—की वृहत् पुस्तक नष्ट हो गई। जिन रचनाओं की रक्षा 'शिवली जिला कानपुर' के राम-लीला के पात्रों ने कंठस्थ कर के की है, उन्हीं को यहाँ एकत्रित कर दिया गया है।

नवरस—में स्फुट रचनायें नवरसों में विभक्त करदी गई हैं।

वंशी में कुल ५६० छन्द हैं। प्राचीन छन्द ब्रजभाषा और नवीन छन्द खड़ी बोली में हैं। प्रूफ की अविशिष्ट अशुद्धियाँ अग्रिम संस्करण में दूर करदी जायेंगी।

—लेखक

श्रीकृष्ण-सप्तशती

(सम्पूर्ण)

श्रीकृष्ण-सप्तशती के ७०० छन्दों में से [illegible] १९२ छन्द 'वंशी' के आरम्भ में दिये गये हैं। यदि उन्हें पाठकों ने अपनाया तो ७०० छन्दों की पूरी पुस्तक शीघ्र ही प्रकाशित करने का विचार है।

पुस्तक मिलने का पता:—

पं० बाबूराम शास्त्री

संकीर्त्तन-विद्यालय, राधानिवास

मु० पो० वृन्दावन

जिला—मथुरा